अन्नं बहुकुर्वीत तद्व्रतम्!

किसान भारती

वर्षः 53, अंकः 12

सितम्बर 2022

संरक्षक
डा. एम.एस. चौहान
कुलपति

निदेशक संचार
डा. एस.के. बंसल

संयुक्त निदेशक संचार
डा. नीलम भारद्वाज

संपादक
डा. अमरदीप

संपादक मंडल
डा. एस.के. गुरू
डा. ए.के. उपाध्याय
डा. पी.के. ओमरे
डा. आशुतोष सिंह
डा. अनीता रानी
डा. विपुल गुप्ता

ई.मेल. *kisanbhartipatrika@gmail.com*

(इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के निजी हैं। प्रकाशक/संपादक इसके लिए उत्तरदायी नहीं हैं।)

विज्ञापन संबंधी जानकारी के लिए सम्पर्क करें:
वी.के. सिंह
व्यवसाय प्रबन्धक
bmpantuniversity@gmail.com
गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर–263145 (उत्तराखण्ड)

एक प्रति का शुल्क	:	₹ 15
वार्षिक सदस्यता शुल्क	:	₹ 150
5 वर्षीय सदस्यता शुल्क	:	₹ 675
10 वर्षीय सदस्यता शुल्क	:	₹ 1200
15 वर्षीय सदस्यता शुल्क	:	₹ 1800

इस अंक में ....

संपादकीय 02

खोज खबर खेती की 03

1. **कृषि उत्पादक संगठनों (एफपीओ) की भारत में स्थिति एवं भूमिका** 04
रेनू गंगवार, धीरेन्द्र कुमार सिंह एवं अनिल कुमार सिंह

2. **उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में सेब की उन्नत बागवानी एवं प्रबन्धन** 08
जगदीश चन्द्र कैम एवं कार्तिक कैम

3. **बेमौसमी करेले की खेती** 13
एस.के. मौय, विनय कुमार एवं शाल्वी

4. **दुधारू पशुओं हेतु वर्ष भर हरा चारा उत्पादन** 17
ओम सिंह

5. **पादप परजीवी सूत्रकृमि जनित रोग एवं उनका प्रबंध** 19
शिल्पी रावत, सत्य कुमार, मनीषा देव एवं विजय जोशी

6. **टर्मिनालिया अर्जुन के औषधीय गुण** 22
सिमरन कौर अरोरा एवं आस्था बालोधी

7. **ट्राइकोग्रामा प्रजाति एक प्रभावी जैविक कीट नियंत्रक** 24
ऋषिपाल, सी.एस. प्रसाद एवं गजे सिंह

8. **प्रगतिशील किसान की सफलता की कहानी** 27
यशपाल सिंह, मनोज कुमार भट्ट एवं आलोक सिंह जयडा

9. **हिमालयन नेटल** 31
मनीषा गहलौत, बीनू सिंह एवं पूजा भट्ट

10. **पौष्टिकता से भरपूर उत्तराखण्ड के पहाड़ी व्यंजन** 34
मनीषा एवं रश्मि

11. **सेहत, संतुलन और संरक्षणए फसल एक फायदे अनेक : मशरूम उत्पादन** 39
ओमकार सिंह, अभिषेक सिंह, विष्णु डी. राजपूत एवं अवनी कुमार सिंह

12. **ब्रूसेलोसिस – एक जूनोटिक रोग** 42
मानसी, अजय कुमार उपाध्याय, अजय कुमार एवं नवल किशोर सिंह

प्रकाशक : संचार केंद्र,
गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर–263145,
ऊधमसिंह नगर (उत्तराखण्ड)

सम्पादकीय

आज के बदलते परिदृश्य में कृषि क्षेत्र में भी बदलाव देखे जा रहे है जिससे खेती बाड़ी की दशा एवं दिशा दोनों बदली हैं। आज कृषि एक उद्यम से उद्योग के पथ पर अग्रसर है। इस बदलाव में वैज्ञानिकों, कृषि संस्थायें, प्रसार संस्थाओं, संचार माध्यमों एवं सरकारी लेख का महत्वपूर्ण योगदान है। इन्हीं प्रयासों के अंतर्गत किसान भारती परिवार का भी प्रयास रहता है कि किसानोपयोगी जानकारी मिलती रहे। अतः किसान भाई पत्रिका के इस अंक में अनेक महत्वपूर्ण विषयों जैसे—कृषि उत्पादक संगठनों (एफपीओ) की भारत में स्थिति एवं भूमिका, उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में सेब की उन्नत बागवानी एवं प्रबन्धन, बेमौसमी करेले की खेती, दुधारू पशुओं हेतु वर्श भर हरा चारा उत्पादन, पादप परजीवाी सूत्रकृमि जनित रोग एवं उनका प्रबंध, ड्रोन की कृषि में बढ़ती उपयोगिता, टर्मिनालिया अर्जुन के औषधीय गुण, ट्राईकोग्रामा प्रजाति एक प्रभावी जैविक कीट नियंत्रक, प्रगतिशील किसान की सफलता की कहानी, हिमालयन नेटल, पौष्टिकता से भरपूर उत्तराखण्ड के पहाड़ी व्यंजन एवं मशरूमः स्वास्थय, खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का एक विकल्प पर लेख प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

पाठकों का सहयोग हमें हमेशा मिलने के साथ—साथ लेखकों का भी सहयोग मिल रहा है उनके द्वारा लिखे गए लेख के माध्यम से ही हम तकनीकी ज्ञान प्रत्रिका के माध्यम से आप तक प्रेषित करते हैं। पुनः सभी को सहयोग के लिए धन्यवाद के साथ आपका—

डा. अमरदीप

खोज खबर खेती की

इस मछली को पालने से होगा लाखों का मुनाफा, जानें मछली पालने की विधि

आज के दौर में खेती–किसानी के साथ में कई लोग मछली पालन, मुर्गी पालन, सूअर पालन जैसे व्यवसाय भी कर रहे हैं, जिसके चलते ये व्यवसाय आम लोगों के बीच में काफी पॉपुलर हो रहे हैं। इसीलिए आज के इस लेख में एक दुर्लभ प्रजाति की मछली चीतल मछलीपालन के व्यवसाय के बारे में बताने जा रहे हैं। दरअसल, चीतल मछली अमेरिका और बांग्लादेश में पई जाने वाली मछली है। ये तालाब में नीचे जमीन की तली पर रहती है इसलिए इसे मीठे पानी की मछली के रूप में भी जाना जाता है। चीतल के अलावा इस मछली को चिटोल मछली, चित्तल मछली आदि नामों से भी जाना जाता है। ये मछली बहुत ही खास मछली है, क्योंकि इसमें कई प्रकार के पौष्टिक तत्व पाए जाते हैं। ये अपने भोजन के रुप में छोटी मछलियां जैसे– झींगा, घोंघे इत्यादि को खाती है। चीतल मछली का पालन करने के लिए अप्रैल महीने में तालाब की तैयारी शुरु की जाती है और संभव हो सके तो इसके लिए 1 एकड़ के खेत में तालाब बनाना ठीक रहता है। तालाब ठीक से बनाने के लिए सबसे पहले अच्छी तरह तालाब की खुदाई करना जरुरी होता है। इसके बाद कुछ दिनों के लिए तालाब को खोद कर ऐसे ही छोड़ देना है ताकि मिट्टी में दरार बन जाए। दरार बनने के बाद पशुओं के गोबर या मुर्गियों के खाद 400 किलो और 50 किलो चुना डाल देनी चाहिए। चीतल मछली तालाब में एकदम नीचे तल पर रहती है इसलिए तालाब में पानी की मात्रा 3 फीट से कम और 4 फिट से ज्यादा नहीं होना चाहिए। ये मछली मांसाहारी होती है इसलिए तालाब में 2 महीने पहले 3 से 5 हजार तिलपिया मछली के बीज डालने चाहिए ताकि ये कुछ दिनों के बाद चीतल मछली के लिए भोजन के रुप में उपयोग हो सकें। चीतल मछली की कीमत बाजार में अन्य मछलियों की तुलना में काफी ज्यादा होती है। भारत में इसकी कीमत 250 रुपए कि.ग्रा. से लेकर 400 रुपए कि.ग्रा. तक रहती है।

स्रोतः कृषि जागरण

इस खेती से कमा सकते हैं लाखों रुपए, फूल से लेकर छाल तक है उपयोगी

फूल किसी का भी हो सुन्दर ही लगता है, लेकिन पलाश के फूल की कुछ बात ही और है यह अपनी खूबसूरती से लोगों को आकर्षित करता है और उन्हें अपनी ओर एक बार देखने के लिए मजबूर करता है। इतना ही नहीं, खूबसूरत होने के साथ–साथ यह औषधीय गुणों से भरपूर होता है, जिसके कारण इसकी बाजार में काफी डिमांड रहती है। अगर हमारे किसान इसकी खेती करते हैं, तो इससे काफी लाभ कमा सकते हैं, इसलिए आज हम पलाश के फूल की खेती से जुड़े महत्वपूर्ण तथ्यों के बारे में बात करने जा रहे हैं। पलाश उत्तर प्रदेश का राजकीय फूल है। इसे कई अलग–अलग नामों से जाना जाता है। जैसे परसा, ढाक, किशक, सुपका, ब्रह्मवृक्ष और फ्लेम ऑफ फोरेस्ट आदि। भारत में पलाश की खेती के बारे में बात की जाए, तो सबसे ज्यादा झारखंड, दक्षिण भारत, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में इसकी खेती की जाती है। इसके पत्ते से लेकर छाल, जड़, लकड़ी, फूल सभी का इस्तेमाल किया जाता है। बाजार में इसका तेल और चूर्ण अच्छे दामों पर बिकता है। इसका पेड़ एक बार लगाने पर 40 साल तक जिंदा रहता है। विशेषज्ञों के मुताबिक, नाक, कान से खून निकलने पर इसका इस्तेमाल किया जाता है। पलाश के गोंद को आंवले के रस में मिलाकर हड्डियां मजबूत रहती हैं। किसान पलाश के पेड़ों से काफी मुनाफा कमा सकते हैं। एक एकड़ में 3200 पौधे लगाए जा सकते हैं, जो कि तीन से चार सालों में फूल देने के काबिल हो जाते हैं।

स्रोतः कृषि जागरण

नीम, तुलसी और गिलोय का जूस करेगा कई खतरनाक बीमारियों का इलाज

आज के समय में भी लोग अंग्रेजी दवा से ज्यादा आयुर्वेद की दवा से अधिक भरोसा करते हैं। शायद यहीं कारण है कि अब लोगों को भी आयुर्वेद की अहमियत समझ में आने लगी है, कि यह लोगों के स्वास्थ्य के लिए बेहद जरूरी है। आपकी जानकारी के लिए बता दें कि आयुर्वेद एक तरह की चिकित्सा प्रणाली है, जिसमें लगभग हर एक तरह की बीमारियों का इलाज किया जाता है। इन्हीं से कुछ ऐसे घरेलू नुस्खों से भी लोग अपनाकर अपने स्वास्थ्य को ठीक रख रहे हैं। तो आइए आज हम आपको ऐसे ही कुछ घरेलू नुस्खों के बारे में बताएंगे, जो आपके लिए बेहद लाभकारी साबित होंगे। यह घरेलू नुस्खा नीम, तुलसी और गिलोय के जूस का है। आयुर्वेद के मुताबिक नीम, तुलसी और गिलोय के जूस कई तरह के गुणों से भरपूर होता है, इसके जूस को पीने से व्यक्ति को कई खतरनाक बीमारियों से छुटकारा मिलता है। बता दें कि इन तीनों के जूस को एक साथ मिलाकर पीने से व्यक्ति का इम्यून सिस्टम स्ट्रांग होता है। इसके अलावा बार–बार होने वाली सर्दी, जुकाम आदि छोटी–मोटी बीमारियों के लिए यह रामबाण है। कई केस में तो यह भी देखा गया है कि इसे नियमित रूप से पीने से व्यक्ति का शुगर लेवल भी नियंत्रित में बना रहता है और साथ ही बीमार में इन तीनों के जूस को पीने बुखार में भी राहत मिलती है। व्यक्ति अपनी सुविधा के मुताबिक, नीम, तुलसी और गिलोय तीनों का जूस अलग–अलग कर के भी पी सकते हैं, लेकिन अगर आप इन तीनों का जूस एक साथ मिलाकर पीएंगे, तो आपको ज्यादा फायदा पहुंचेगा। डायबिटीज वाले व्यक्तियों को इन तीनों का मिश्रण कर जूस जरूर पीना चाहिए। इसके सेवन से आपका लिवर शक्तिशाली बनता है। इसे आप प्रतिदिन सुबह खाली पेट भी पी सकते हैं। जिन व्यक्तियों को सांस लेने में परेशानी आती है, वह प्रतिदिन इस जूस का सेवन करें। ऐसा करने से आपके फेफड़े मजबूत बनेंगे और साथ ही अस्थमा जैसी बीमारियां भी दूर होंगी।

स्रोतः कृषि जागरण

कृषि उत्पादक संगठनों (एफपीओ) की भारत में स्थिति एवं भूमिका

रेनू गंगवार[1], धीरेन्द्र कुमार सिंह[2] एवं अनिल कुमार सिंह[3]

कृषि, भारत में नियोजित आर्थिक विकास का मूल है, जैसा कि हम जानते हैं भारतीय योजना अमीरों से गरीबों की ओर धन प्रवाह उक्ति पर आधारित है जिसमें कृषि के माध्यम से गरीबी और क्षेत्रीय असमानता कम की जा सकती है। कृषि उत्पादक संगठन (एफपीओ) प्राथमिक उत्पादकों का समूह है जिसमें मुख्य रूप से (लगभग 70 से 80 प्रतिशत) छोटे व सीमांत किसान शामिल हैं। वर्तमान में लगभग 5000 एफपीओ मौजूद हैं जिसमें देश की किसान उत्पादक कंपनियों को भी शामिल किया गया है जिनका गठन भारत सरकार, राज्य सरकारें और नाबार्ड के विभिन्न प्रावधान के तहत किया जाता है।

भारत में छोटे और सीमांत किसान कुल भूमि जोत का लगभग 85 प्रतिशत है। एफपीओ के गठित किये जाने का उद्देश्य उत्पादन में पैमाने की अर्थव्यवस्था एवं कृषि और संबद्ध क्षेत्र में विपणन द्वारा सामुहिक उपायों का लाभ उठाना है। देश में, वर्तमान में अधिकांश एफपीओ उनके संचालन के प्रारंभिक चरण में हैं जिसमें शेयर धारक सदस्यता 100–1000 से अधिक किसानों तक है जिसके लिए न केवल तकनीकी सहायता की आवश्यकता है साथ ही पर्याप्त पूँजी और ढांचागत समर्थन की भी आवश्यकता है। एफपीओं परिस्थितिकी तंत्र को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है जिसके परिणामस्वरूप छोटे और सीमांत किसानों का सशक्तिकरण होता है। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि किसान उत्पादक संगठन छोटे किसानों को शुरू से अन्त तक सहायता और सेवाएं प्रदान करता है।

भारतीय कृषि रोजगार प्रदान करने एवं विभिन्न उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति प्रदान करने में अग्रणी नियोक्ता की भूमिका निभाती है। भारत में बेहद विषम, विजातीय और खंड़ित भूमि जोत है। छोटी जोत आधारित कृषि लगातार अलाभकारी होती जा रही है। उत्पादकों की कमजोर पहुंच, कम उत्पादन मात्रा, सुनिश्चित बाजार की कमी, खराब आपूर्ति श्रृंखला, गुणवत्ता निवेश की कमी, क्रेडिट सुविधाएं और उन्नत प्रौद्योगिकियों के साथ बार–बार फसल की विफलता किसान की बिचौलियों पर अत्यधिक निर्भरता का कारण है। भारत में छोटे और सीमांत किसान कुल भूमि जोत का लगभग 85 प्रतिशत है जबकि 44 प्रतिशत भूमि पर खेती की जाती है। भारतीस रिजर्व बैंक 2019 के अनुसार 86.4 प्रतिशत किसान छोटे और सीमांत हैं जिनके पास औसतन 0.39 हैक्टेयर से कम भूमि है और 7331 रू. की औसत मासिक आय अर्जित करते हैं। आधुनिक तकनीकी अपनाने के स्तर में कमी, अपर्याप्त विस्तार समर्थन सेवाएं, वित्तीय सहायता की कमी और कम

[1,3]सहायक प्राध्यापक; [2]सह अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय कोटवा, आजमगढ़ (आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रोद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या)

बाजार दक्षता के कारण निम्न आय स्तर छोटे उत्पादकों से संबन्धित प्रमुख समस्याएं हैं। इन परिस्थितियों में अत्यधिक संरचनात्मक सुधारों एवं परिवर्तनकारी पहलों को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में कृषि उत्पादकों की सामुहिक खेती एवं मूल्यवर्धन और विपणन एक व्यवहारिक समाधान साबित हो सकता है जो कि कृषि उद्योगपतियों की भागीदारी से अर्थव्यवस्थाओं को पूरा कर वस्तु विशिष्ट कृषि मूल्य श्रृंखला बनाने में मदद करेगा।

कृषि उत्पादक संगठन (एफ.पी.ओ.) का गठन और विकास केन्द्र सरकारों, राज्य सरकारों और उनकी एजेंसियों द्वारा गतिशील रूप से प्रोत्साहित किया जाता है। इसका लक्ष्य भागीदारों का गठबंधन बनाकर हासिल किया जा सकता है। एफ.पी.ओ. के माध्यम से कृषि को टिकाऊ उद्यम में बदलने के लिए केन्द्र सरकार ने 10,000 नये एफ.पी.ओ. बनाने ओर उनको बढावा देने के लिए देश में 6,865 करोड़ रू. का बजटीय प्रावधान पारित किया है। एफ.पी.ओ. को सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने दिनांक 19.02.2020 को ''उत्पादन संगठन का गठन और प्रचार'' योजना की शुरूआत की। इस योजना का उद्देश्य अगले पांच साल में 10,000 एफ.पी.ओ. को बढ़ावा देना है जो कि छोटे, सीमांत और भूमिहीन किसानों की उनके जीवन स्तर और आय बढ़ाने के लिए मदद करेगा। इस योजना का मुख्य उद्देश्य है छोटे और सीमांत किसानों को बेहतर सामूहिक गुणवत्ता निवेश तक पहुंच के लिए मदद करना, आधुनिक प्रौद्यागिकी, ऋण सुविधाएं और आय की बेहतर प्राप्ति के लिए पैमाने की अर्थव्यवस्था के माध्यम से विपणन पहुंच। कृषि मंत्रालय का मानना है कि छोटे और सीमांत किसानों की सुविधा के लिए उन्नत प्रौद्योगिकियों तक पहुंच के लिए, पर्याप्त क्रेडिट सुविधाओं के लिए, बेहतर गुणवत्ता निवेश के लिए, बेहतर बाजारों के लिंकेज के लिए और बेहतर उत्पादन के लिए एफ.पी.ओ. की शुरूआत की गयी है जो कि गुणवत्ता/मूल्य वर्धित वस्तुओं के बेहतर उत्पादन को प्रोत्साहित करेगा।

खाद्य और कृषि संगठन के अनुसार ''किसान और ग्रामीण उत्पादन संगठन'' स्वतंत्र, गैर–सरकारी, लघुधारकों के सदस्यता पर आधारित (अंशतः या पूर्ण) स्व–नियोजित ग्रामीण संगठन (किसान, चरवाहे, कारीगर मछुवारे, भूमिहीन किसान, महिलाएं, छोटे उद्यमी और स्वदेशी) से संदर्भित है। कृषि और सहकारिता विभाग ने वर्श 2013 में एफ.पी.ओ. के गठन को प्रोत्साहित और प्रदर्शन करने के लिए संकेतक दिशा निर्देश निर्धारित किये और एक नीति दस्तावेज जारी किया जिसका शीर्शक था ''कृषि उत्पादन संगठन के लिए नीति और प्रक्रिया दिशानिर्देश''। कृषि उत्पादन संगठन का विकास, आत्मनिर्भर भारत को प्रभावी ढंग से चलाने के लिए सबसे अच्छे साधनों में से एक है। यह ग्रामीण एवं शहरी अर्थव्यवस्थाओं के बीच एक प्रभावी और संतुलित कड़ी स्थापित करेगा।

एफ.पी.ओ. के प्रमुख बिन्दु

1. प्रारम्भ में उत्तर पूर्व और पहाड़ी क्षेत्र में किसान उत्पादक संगठन में न्यूनतम सदस्यों की संख्या 100 और मैदानी क्षेत्र में 300 होती है।
2. किसान उत्पादन संगठन द्वारा ''एक जिला एक उत्पाद'' के तहत विशेषज्ञता, ब्रांडिंग, मार्केटिंग, प्रसंस्करण और निर्यात को बढ़ावा दिया जाता है।
3. किसान उत्पादन संगठन क्लस्टर आधारित व्यवसायिक संगठनों द्वारा गठित और प्रचारित किये जाते हैं।
4. जिन आकांक्षी जिलों के प्रत्येक ब्लाक में एक एफ.पी.ओ. होगा ऐसे आकांक्षी जिलों को एफ.पी.ओ. के गठन में प्राथमिकता दी जाती है।

एफ.पी.ओ. से होने वाले लाभ

1. घटती औसत भूमि जोत का आकारः वर्ष 1970 से

1915–16 तक औसत खेत का आकार 2.3 हैक्टेयर से घटकर 1.08 हैक्टेयर हो गया है जबकि वर्ष 1980–81 से 2015–16 तक छोटे और सामांत किसानों की कृषि में भागीदारी 70 प्रतिशत से 86 प्रतिशत तक बढ़ी है। एफ.पी.ओ. किसानों को सामूहिक खेती के लिए इसमें शामिल कर सकते हैं एवं छोटे खेत के आकार से उत्पन्न उत्पादकता मुद्दे भी पता कर सकते हैं। इसके अलावा यह अतिरिक्त रोजगार प्रदान करनें में भी मदद कर सकता है।

2. कॉरपोरेट्स के साथ बातचीतः एफ.पी.ओ. बड़े कार्पोरेट उद्यम के साथ बातचीत करने में किसानों की मदद कर सकता है। क्योंकि यह सदस्यों को एक समूह के रूप में बातचीत करने की अनुमति देता है और छोटे किसानों की निवेश और उत्पादक दोनों बाजारों में मदद कर सकता है।
3. एकत्रीकरण का अर्थशास्त्रः एफ.पी.ओ. किसानों को कम लागत में और गुणवत्तापूर्ण निवेश प्रदान कर सकता है। उदाहरण के लिए फसलों हेतु ऋण, मशीनरी की खरीद, एग्री–इनपुट्स (उर्वरक, कीटनाशक आदि) और कृषि उत्पादन की खरीद के बाद प्रत्यक्ष विपणन। यह सदस्यों को समय की बचत, लेनदेन की लागत, संकट बिक्री, मूल्य में उतार–चढ़ाव, परिवहन, गुणवत्ता, रख–रखाव आदि करने में सक्षम बनाता है।
4. समाजिक प्रभावः एफ.पी.ओ. के रूप में सामाजिक पूंजी का विकास होगा, महिला किसानों की भागीदारी एव निर्णय लेने में भूमिका बढ़ेगी। एफ.पी.ओ. सामाजिक संघर्षों को कम कर सकता है और समुदाय में यह बेहतर भोजन और पोषण मूल्यों को भी बढ़ाता है।

एफ.पी.ओ. का प्रचार कार्यान्वयन संस्थाओं के माध्यम से किया जाता है। वर्तमान समय में 09 कार्यान्वयन संस्थाओं को एफ.पी.ओ. के गठन और संवर्धन की जिम्मेदारी दी गयी है।

एफ.पी.ओ. की महत्वपूर्ण गतिविधियां

एफ.पी.ओ. कच्चे माल की खरीद से लेकर अंतिम उत्पाद की डिलीवरी तक किसी एक या अधिक गतिविधियों की जिम्मेदारी लेता है। संक्षेप में एफ.पी.ओ. निम्नलिखित गतिविधियों में कार्य कर सकता है–

1. निविष्टिओं की खरीद
2. बाजार की जानकारी का प्रसार
3. प्रौद्यागिकी और नवाचारों का प्रसार
4. निविष्टिओं के लिए वित्त की सुविधा
5. उत्पाद का एकत्रीकरण और भन्डारण
6. प्राथमिक संस्करण जैसे सुखाने, सफाई और ग्रेडिंग
7. ब्रांड निर्माण, पैकेजिंग, लेबलिंग और मानकीकरण
8. गुणवत्ता नियंत्रण
9. संस्थागत खरीदारों के लिए विपणन
10. कमोडिटी एक्सचेन्जों में भागीदारी
11. निर्यात

एफ.पी.ओ. के विभिन्न प्रकार

महिला किसान उत्पादक संगठन : किसान उत्पादक संगठन महिलाओं की कृषि में भूमिका का विश्लेषण करने में एवं कृषि में महिलाओं को उनकी साझेदारी से संबन्धित समाधान प्रदान करने में भी मदद करता है। सरकार पहले से ही महिला किसानों को विशेष सब्सिडी दे रही है जो कि कृषि में महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण में सहायता करेगी। महिला किसान उत्पादक संगठन की स्थापना निम्नलिखित क्षेत्रों के अन्तर्गत की जाती है। जैसे कि–

- जीवन संगिनी कृषि विकास महिला किसान
- निर्माता कंपनी मान देशी किसान निर्माता संगठन
- आरण्यक कृषि उत्पादक कंपनी लिमिटेड
- समृद्धि महिला फसल उत्पादक कंपनी
- अपनी सहेली उत्पादक कंपनी लिमिटेड

डेयरी से संबन्धित एफ.पी.ओ.

- श्रीजा महिला दुग्ध उत्पादक कंपनी

- मुलकनूर महिला पारस्परिक सहायता प्राप्त दूध
- निर्माता सहकारी संघ लिमिटेड मैत्री महिला डेयरी और कृषि
- प्रोड्यूसर कंपनी लिमिटेड सहज मिल्क निर्माता कंपनी लिमिटेड
- कौशिक महिला दुग्ध उत्पादक

पशु चिकित्सा संबन्धी एफ.पी.ओ.

- बसुंधरा उत्पाद संगठन
- साबित्री बाई फुले बकरी पालन उत्पादक
- बहु–उत्पादों से संबन्धित कंपनी एफ.पी.ओ.
- रूडी मल्टी ट्रेडिंग कंपनी लिमिटेड
- देवभूमि प्राकृतिक उत्पाद निर्माता सीमित दायित्व वाली कंपनी

नीति प्रावधान और राजकोषीय उपाय

भारत सरकार ने समय–समय पर नीति और राजकोषीय दोनो क्षेत्रों में प्रगतिशील पहल की है। भारत सरकार के तहत वाई0के0 अलघ की अध्यक्षता में किसान उत्पादक कंपनी को बढावा देने के लिए किसान उत्पादक कंपनी अधिनियम IX। धारा 581c के विशिष्ट प्रावधान के साथ धारा 465 कंपनी अधिनियम 1956 के तहत एवं नई कंपनी अधिनियम 2013 राष्ट्रीय नीति का गठन किया गया है। नीति प्रावधान और समिति की सिफारिसों के आधार पर भारत सरकार ने विभिन्न प्रचार और सक्षम राजकोषीय उपाय की शुरूआत की। 2021 में नाबार्ड ने प्रचार और उत्पादन निधि की स्थापना की। 2019 तक 9.16 लाख छोटे और सीमान्त किसानों का नामांकन किया जिसने 4235 एफपीसी को बढ़ावा दिया है। 2014–15 के केंद्रीय बजट में 200 करोड़ रूपये का परिव्यय 2000 एफपीसी को बढ़ावा देने के लिए किया गया है। इसके अलावा नाबार्ड और एसएफएसी के साथ राष्ट्रीय सहकारी विकास सहयोग (एनसीडीसी) एफपीसी को बढ़ावा देने के लिए एक नया दृष्टिकोंण ''क्लस्टर आधारित दृष्टिकोंण'' शुरू किया है। बजट भाषण और वर्ष के प्रावधान में 10000 एफपीसी को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न नीतियां, कार्यक्रम और योजनाएं बनाई गयी हैं।

निष्कर्ष

कृषि उत्पादक संगठन एक ऐसी संस्था है जो छोटे और सीमांत किसानों को सक्षम करने के लिए एवं इनपुट सेवाओं और फसल उत्पादन तक बेहतर पहुंच के लिए किसानों को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसने किसानों को एकत्रीकरण और विपणन में समर्थन भी किया है। हालांकि कृषि उत्पादक संगठन प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन, जोखिम प्रबंधन, अभिसरण और सहयोग, नवाचार और तकनीकी जैसे क्षेत्र में भी अध्ययन करता है। एफ.पी.ओ. अभिनव हस्तक्षेपों जैसे की छोटे पैमाने पर खाद्य प्रसंस्करण आधारित उद्यमिता एवं स्थानीय कृषि इनपुट उत्पादन के माध्यम से आय बढ़ाने के अवसर पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। व्यापारिक दृष्टिकोंण से एफ.पी.ओ. स्थानीय खपत और बाहरी बाजार केन्द्र में संतुलन बनाने का कार्य करते हैं। वर्तमान समय में कृषि उपज की बिक्री से दबाव कम करने के लिए विकल्प की और विपणन के विकेन्द्रीकृत चैनल की आवश्यकता है। एफ.पी.ओ. एक ऐसे माडल के रूप में उभरा है जोकि शहरी उपभोक्ताओं और किसानों को सीधे जोड़कर आवश्यक वैकल्पिक चैनल प्रदान करने में मदद करता है। विशेष रूप से खराब होने वाले उत्पादक जैसे–फल, सब्जियां। किसान उत्पादक संगठन और उत्पादक कंपनियां कृषि उपज की मूल्य श्रृंखला में सुधार करने के लिए बहुत फायदेमंद है। स्वैच्छिक सदस्य उत्पादक समूहों का स्वामित्व उनको वित्तपोषित और नियंत्रित कर सकते हैं तथा किसान सहकारी समितियां उन सदस्यों को सक्षम बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करेः ई. मेलः *renoogangwar@gmail.com* एवं मो. न. *9719199990.*

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में सेब की उन्नत बागवानी एवं प्रबन्धन

जगदीश चन्द्र कैमे[1] एवं कार्तिक कैमे[2]

सेब उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों का सबसे महत्वपूर्ण शीतोष्ण फल है, इसकी खेती भारत में मुख्य रूप में जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में की जाती है। इनके अलावा अब नागालैण्ड, सिक्किम, अरूणाचल प्रदेश एवं मेघालय के ऊँचाई वाले हिस्सों में भी सेब की खेती की जा रही है। सेब उत्पादन की दृष्टि से भारत में उत्तराखण्ड का तृतीय स्थान है। उत्तरकाशी, अल्मोड़ा, नैनीताल, देहरादून एवं चमोली आदि उत्तराखण्ड में सेब उत्पादन के प्रमुख जनपद हैं।

सेब का सेवन ताजे पके फलों के साथ साथ विभिन्न प्रसंस्कृत उत्पादों जैसे– जैम, जैली, मुरब्बा एवं जूस आदि के रूप में किया जाता है। सेब के पोषण मान के सन्दर्भ में अंग्रेजी भाषा की एक पुरानी कहावत प्रचलित है, जिसका अर्थ हे ''प्रतिदिन एक सेब खाने से किसी भी प्रकार के रोग से दूर रहा जा सकता है''।

भूमि: सेब की बागवानी से अच्छी उपज लेने के लिए सामान्यतः 6.5 पी.एच. मान वाली उर्वर दोमट मिट्टी का चुनाव करना चाहिए। भूमि में जल भराव की स्थिति नहीं होनी चाहिए। पथरीली भूमि सेब की खेती के लिए अच्छी नही मानी जाती है।

जलवायु: ठण्डी जलवायु में उगाये जाने वाले विभिन्न फलों को सुसुप्तावस्था से पुनः सक्रिय अवस्था में आने के लिए एक निश्चित समय तक लगातार 7^0 से. या इससे कम तापमान की आवश्यकता होती है, जिसे अभिशीतन तापमान कहा जाता है। सेब की विभिन्न प्रजातियों में यह आवश्यकता औसतन 1000–1600 घण्टे होती है। यही कारण है कि इसकी व्यवसायिक खेती सामान्यतः समुद्र तल से 1800–2700 मी. ऊँचाई वाले क्षेत्रों में की जाती है। फल बनने के लिए 21.1^0 से 26.7^0 से. तापमान उपयुक्त होता है। सक्रिय अवस्था में तापमान में बहुत अधिक गिरावट एवं पाला हानिकारक होता है। सेब की खेती के लिए अच्छी तरह से वितरित 100–125 से.मी. वार्षिक वर्षा की आवश्यकता होती है। अधिक ऊँचाई वाले शुष्क शीतोष्ण क्षेत्र अच्छी गुणवत्ता एवं अच्छे रंग वाले सेबों के उत्पादन के लिए उपयुक्त होते हैं।

उन्नत किस्में: उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त विभिन्न प्रजातियों की विशिष्टियों का विवरण तालिका–1 में दर्शाया गया है।

पौध रोपण: सामान्यतः सेब के पौधों का रोपण 15 दिसम्बर से 15 फरवरी तक किया जाता है। आमतौर पर पौधों का रोपण 6x6 मी. की दूरी पर किया जाता है। बरसात का मौसम समाप्त होने पर सितम्बर–अक्टूबर के महीने में 1 घन मीटर (1x1x1) आकार के गड्ढों की खुदाई कर लेनी चाहिए। गड्ढों से निकली हुई ऊपरी मिट्टी में 35–40 कि.ग्रा. अच्छी सड़ी गोबर की खाद मिला कर इस प्रकार भरना

सेब

[1]अपर निदेशक, उद्यान एवं खाद्य प्रसंस्करण विभाग, राजकीय उद्यान, सर्किट हाउस, देहरादून, उत्तराखण्ड; [2]मुख्य वास्तुकार, 2/3फ्लोर, 3 ब्लॉक, बासावेश्वर नगर, बैंगलोर, कर्नाटक

तालिका–1

प्रजाति का नाम	पुष्पन से तुड़ाई की अवधि (दिन)	औसत उपज (किग्रा./वृक्ष)	औसत फल का वजन (ग्राम)	औसत फल का आकार लम्बाई (से.मी.)	चौड़ाई (से.मी.)	औसत कुल घुलनशील ठोस (प्रतिशत)
शीघ्र पकने वाली किस्में						
ग्लॉस्टर	105–110	22.69	64.67	4.89	5.32	13.23
चौबटिया अनुपम	100–105	19.12	70.90	4.33	5.88	12.93
चौबटिया प्रिन्सेस	105–115	23.92	100.75	5.25	6.46	12.20
मौलिस डेलीशियस	105–110	28.92	172.52	6.51	7.73	13.17
गला मस्ट	110–115	27.16	82.67	4.81	5.96	13.33
फैनी	105–110	28.10	114.69	5.26	6.10	12.10
अर्ली शानबर्री	100–115	24.00	80.50	4.13	5.23	12.16
बैनोनी	105–110	26.15	90.41	4.62	5.84	13.35
मध्य मौसमी व देर से पकने वाली किस्में						
वैन्स डेलीशियस	115–120	37.82	159.33	6.64	7.29	11.93
वरमॉन्ट स्पर	120–125	34.71	167.33	6.60	7.59	13.77
रिच–ए–रेड	120–125	38.98	158.67	6.53	7.45	13.83
ब्राइट एण्ड अर्ली	120–125	24.03	146.00	5.97	7.20	13.83
रेड चीफ	120–125	38.56	140.00	6.41	6.98	14.73
रेड स्फर	120–125	46.11	217.33	6.98	8.22	14.20
टॉप रेड	120–125	34.12	144.37	6.15	7.22	11.26
स्टार क्रिमसन	120–125	45.57	168.00	6.38	7.61	12.73
स्काई लाइन सुप्रीम	125–130	44.13	117.33	5.66	6.78	12.00
ऑर्गन स्पर	130–135	40.26	151.11	6.37	7.11	13.33
स्टारकिंग डेलीशियस	138–140	39.40	155.11	7.48	7.09	14.32
गोल्डन डेलीशियस	140–145	42.70	140.37	7.08	6.45	12.50
ग्रेनी स्मिथ	135–140	39.56	136.67	8.00	7.26	13.09

चाहिए कि गड्ढे भूमि से 15–20 से.मी. ऊपर उठे रहें। इस प्रकार तैयार किये गये गड्ढों में जनवरी–फरवरी माह में पौध रोपण किया जाता है। रोपण पूर्व पौधों का भली भॉति निरीक्षण कर लेना चाहिए एवं जड़ों के खराब हिस्सों को काटकर अलग कर देना चाहिए। रोपण के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि कलम का जोड़ भूमि की सतह से 15–20 से.मी. ऊपर रहे।

परागण प्रबन्धनः फल सेटिंग बढ़ाने के लिए सेब के बागों में चयनित किस्म के पौधों के साथ 30–33 प्रतिशत परागकर्ता किस्म के पौधों का भी समायोजन इस प्रकार करना चाहिए कि प्रत्येक तीसरी पंक्ति के सभी पौधे या प्रत्येक पंक्ति में चयनित किस्म के प्रत्येक दो पौधों के बाद तीसरा पौधा परागकर्ता किस्म का होना चाहिए। पौध रोपण के समय इस बात का विशेष ध्यान देना चाहिए कि मुख्य किस्म व परागकर्ता

तालिका–2

पौधे की आयु	गोबर की सड़ी खाद (कि.ग्रा. / पौधा)	वर्मी कम्पोस्ट (किग्रा. / पौधा)	यूरिया (ग्राम / पौधा)	डी.ए.पी. (ग्राम / पौधा)	म्यूरेट ऑफ पोटाश (ग्राम / पौधा)
1	5	3	44	55	117
2	10	6	87	108	166
3	15	9	130	163	250
4	20	12	174	217	334
5	25	15	217	271	418
6	30	18	260	325	501
7	35	21	304	380	585

किस्म के पुष्पन का समय समान होना चाहिए। शीघ्र पकने वाली किस्मों में टाइडमैन अर्ली वॉरसेस्टर, मन्चूरियन क्रैब तथा मध्यम व देर से पकने वाली किस्मों के साथ रेड गोल्ड, लॉर्ड लैम्बार्न, गोल्डन डेलीसस व परागक किस्में लगानी चाहिए। इसके अतिरिक्त पुष्पन के समय बीमें में मधुमक्खियों के 3–4 डिब्बे (हाइव) प्रति हैक्टेयर के हिसाब से रखने चाहिए। इससे भी परागण क्रिया में बढ़ोत्तरी होती है।

सधाई एवं कटाई–छँटाई: सेब के पौधों को लगाने के बाद एक निश्चित आकार देने के लिए रूपान्तरित प्ररोह प्रद्धति के द्वारा इनकी सधाई की जाती है, जिसमें वार्षिक कार्य निम्न प्रकार से किये जाते हैः

प्रथम वर्ष में: पौधों को रोपण के उपरान्त 90–110 से.मी. की ऊँचाई पर काट दिया जाता है।

द्वितीय वर्ष में: मुख्य प्ररोह पर 6 से 8 शाखाओं का चुनाव इस प्रकार किया जता है कि प्रत्येक शाखा का प्रसार भिन्न–भिन्न दिशा में हो। प्रथम शाखा भूमि से 40–50 से.मी. की ऊँचाई पर होनी चाहिए तथा दो शाखाओं के मध्य उचित दूरी रखनी चाहिए।

तृतीय वर्ष में: चुनी हुई शाखाओं के 1 / 3 भाग को काट दिया जाता है, जिससे इन शाखाओं पर उपशाखाएँ विकसित हो जाती है।

चतुर्थ वर्ष में: मुख्य प्ररोह को शाखाओं के कुछ ऊपर से काट दिया जाता है। सेब के फल स्परों पर लगते है तथा प्रत्येक स्पर 5–6 वर्षों से अधिक समय तक फल देती है। अतः नये स्परों के निर्माण तथा पुराने स्परों को हटाने के लिए उचित छँटाई की आवश्यकता होती है।

सिंचाई: सामान्यतः मृदा सरंचना एवं नमी के अनुसार ही पौधों में सिंचाई करनी चाहिए। यद्यपि प्रारम्भिक अवस्था सेब के पौधों को नियमित सिंचाई की आवश्यकता होती है। अप्रैल से अगस्त के दौरान किसी भी दशा में पानी की कमी नही होनी चाहिए। पौधे की जल मॉग की पूर्ति के लिए ग्रीष्म काल में 7–8 दिनों के अन्तराल पर व शीत काल में अधिकतम 15–20 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए।

खाद तथा उर्वरक : खाद तथा उर्वरकों की मात्रा में मिट्‌टी तथा पौधे की पत्तियों की जॉच के उपरान्त ही निर्धारित की जानी चाहिए परन्तु यदि जॉच सम्भव न हो तो पौधे की आयु के अनुसार पोषण तत्वों की पूर्ति तालिका–2 के अनुसार करनी चाहिए।

तालिका–2 के अनुसार सातवें वर्ष में खाद की मात्रा को स्थिर कर देना चाहिए अर्थात सातवें वर्ष के उपरान्त इसी मात्रा को प्रति वर्ष पौधों को देना चाहिए।

गोबर की खाद व वर्मी कम्पोस्ट की पूरी मात्रा

तालिका–3

रोग	लक्षण	रोकथाम
चूर्णिल आसिता या पाउडरी मिल्ड्यू	इस रोग में पत्तियों एवं कलियों पर सफेद चूर्ण जैसे धब्बे दिखाई देते हैं जो धीरे–धीरे गहरे भूरे रंग के हो जाते है।	फफूंदनाशक हैक्जाकोनाजोल का 0.05ः छिड़काव करना चाहिए।
श्वेतमूल रोग	जड़ों की सतह को सफेद रोएँदार फफूंद ढक लेती है तथा जड़ें भूरी हो जाती है। प्रभावित पौधों में पत्तियाँ कम लगती है तथा समय से पहले ही पीली पड़कर झड़ जाती है	15–20 दिन के अन्तराल पर कार्बेन्डाजिम 0.1 प्रतिशत (1 ली. पानी में 1 ग्राम) और कॉपर सल्फेट 0.05 प्रतिशत (1 ली. पानी में 0.5 ग्राम) का घोल से पौधे के तने के चारों ओर सिंचाई कर देनी चाहिए।
सेब को असामयिक पतझड़ या मार्सोनीना ब्लॉच	पौधे की निचली परिपक्व पत्तियों में भूरे रंग के धब्बे बन जाते है जो संक्रमण बढ़ने के साथ साथ आकार में बड़े हो जाते हैं तथा पत्तियाँ पीली पड़कर झड़ने लगती है	फलों की तुड़ाई उपरान्त 0.3 प्रतिशत मैन्कोजेब का छिड़काव करना चाहिए। इसके अलावा ग्रसित पत्तियों को इकट्ठा करके जला देना चाहिए ? अथवा यूरिया के 2–3ः घोल का छिड़काव करके पत्तियों को नष्ट कर देना चाहिए।
सेब का कैंकर रोग	पेड़ की शाखाओं के मुख्य तने से जुड़ाव के स्थान पर काले धब्बे दिखाई देता है तथा तने व शाखाओं की छाल फटने लगती है एवं तना धीरे–धीरे सूखने लगता है	कॉपर ऑक्सी क्लोराइड के 0.05ः घोल का छिड़काव करना चाहिए तथा कर्षण क्रियाओं के दौरान पेड़ पर बने घावों पर चौबटिया पेस्ट का लेप लगा देना चाहिए।

प्रमुख कीटः विभिन्न कीटों, उनके लक्षण एवं रोकथाम की जानकारी तालिका–4 में दर्शाय गयी है।

तालिका–4

कीट	लक्षण	रोकथाम
वूली एफिड	पौधे के प्रभावित हिस्सों में रूई जैसा पदार्थ लगा दिखाई पड़ता है, जिसमे गुलाबी रंग के माहू कीट होते है, जो प्रभावित भाग से रस चूसते है	दिसम्बर जनवरी माह में 0.05ः क्लोरपाइरीफॉस के घोल से उपचारित कर देना चाहिए एवं समय–समय पर निकलने वाले सकर्स को निकालकर नष्ट कर देना चाहिए।
टेन्ट कैटरपिलर	इस कीट की सुडियाँ काले रंग की होती हैं, जो पत्तियों एवं कोमल शाखाओं को खा जाती है	पेड़ पर बने जालों को कटाई–छँटाई के समय हटा देना चाहिए। इसके अलावा क्लोरपाइरीफॉस का 0.05ः घोल का छिड़काव साफ मौसम में करना चाहिए।

सेब की बागवानी

के साथ फास्फोरस तथा पोटाश उर्वरक की सम्पूर्ण मात्रा को दिसम्बर–जनवरी माह में ही पौधों के मुख्य तने से 75 से.मी. दूर चारों ओर गोलाई में नाली बनाकर देना चाहिए। नत्रजन उर्वरक की कुल मात्रा को दो भागों में बॉटकर प्रथम भाग को फरवरी–मार्च में कली के फूटने से 2–3 सप्ताह पूर्व तथा दूसरे भाग को फूल खिलने के एक माह पश्चात् देना चाहिए।

अंतर्शस्य कियायें: पेड़ के नीचे थाले बनाकर उन्हें साफ रखना चाहिए एवं वर्शाकाल में जल निकास का भी समुचित प्रबन्ध करना चाहिए। यदि सम्भव हो तो थालों के ऊपर घास या काली पालीथीन की पलवार बिछानी चाहिए। पौधों के बीच की खाली जगह में मटर, राजमा, लहसुन, आदि फसलों को उगाया जा सकता है।

सेब के प्रमुख रोग: सेब के प्रमुख रोग, उनके लक्षण एवं रोकथाम की जानकारी तालिका–3 में दर्शायी गयी है।

फलों की तुड़ाई, श्रेणीकरण एवं पैंकिग: सेब के फलों की तुड़ाई हेतु उनकी परिपक्वता के कुछ मानक निर्धारित किये गये है जैसे फलों का आसानी से टूट जाना, फलों की बाहरी सतह का रंग हरे से लाल हो जाना, बीजों का रंग कत्थई भूरा होना। इसके अलावा विभिन्न प्रजातियों में पुष्पन से लेकर फलों के परिपक्व होने के बीच की अवधि का निर्धारण किया गया है, जिसके आधार पर भी फलों की तुड़ाई का समय का निर्धारण किया जा सकता है। फलों को तोड़ने के पश्चात कुछ समय के लिए उन्हें किसी ठण्डे स्थान पर रखना चाहिए, जिससे उनका तापमान सामान्य हो जाए। इसके लिए उन पर ठण्डे पानी की बौछार भी की जा सकती है। इसके उपरान्त फलों को भलीभॉति सुखाकर एवं उनकी किस्म, आकार व रंग के अनुसार अलग–अलग करके पेटियों में भरना चाहिए। इस प्रकार एक पेटी में केवल एक ही किस्म या श्रेणी के फल रखने चाहिए। जिससे किसानों को उनके उत्पाद का अधिक दाम मिलने की सम्भावना बढ़ जाती है। पेटियों को बन्द करते समय कीलों को इस प्रकार लगाना चाहिए कि अन्दर रखे फलों को किसी भी प्रकार की क्षति न पहुँचे। पैंकिग लकड़ी अथवा गत्ते की पेटियों में करनी चाहिए।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करेः ई. मेलः ***jagdishckaim@gmail.com*** **एवं मो. न.** ***9412951572.***

बेमौसमी करेले की खेती

एस.के. मौर्य[1], विनय कुमार[2] एवं शाल्वी[3]

औषधीय गुणों की वजह से देश भर के बाजारों में करेला की माँग हमेशा रहती है। वर्तमान में करेला की ऐसी प्रजातियाँ मौजूद हैं जिन्हें कहीं भी और किसी भी मौसम में उगाया जा सकता है। करेला एक महत्वपूर्ण व्यवसायिक एवं मूल्यवर्धक फसल है जिसकी खेती अधिक लाभ हेतु पॉलीहाउस में ठण्ड के समय (बेमौसमी) भी की जा सकती है यह तकनीक शहरों एवं बाजारों के पास बसे गाँवों के किसानों हेतु बहुत ही लाभकारी है।

बेमौसमी करेले की खेती गर्मियों के मौसम की है लेकिन इसके फलो की मॉग बाजार में हमेशा होती है, इसलिए यदि इसे पॉलीहाउस तकनीक के द्वारा उगाया जाय तो बिना मौसम के भी फल मिलते रहेगे। पॉलीहाउस में करेला को मैदानी क्षेत्रों में बेमौसमी उत्पादन हेतु सितम्बर के माह में लगाया जा सकता है।

मैदानी क्षेत्रों के पॉलीहाउस में मई अन्त से पूरे जून माह में पॉलीहाउस से खेत को आराम देते हैं और पूरे वर्ष हेतु उसमें गहरी जुलाई, समतलीकरण, खाद, दवा आदि डालकर भूमि सोधन के साथ–साथ पुराने पॉलीहाउस की मरम्मत, ड्रिप सिंचाई के पम्पों की मरम्मत, धुलाई, सफाई, क्यारियां बनाना आदि क्रिया करते हैं, जिसका वर्णन नीचे किया गया है।

पॉलीहाउस में भूमि की तैयारी

ऊँची लम्बी क्यारियां बना लें और उसको अच्छी तरह से समतल कर लें उसके बाद 5 कि.ग्रा. प्रति वर्ग मीटर की दर से गोबर कम्पोस्ट खाद या वर्मीकम्पोस्ट खाद को फैलाकर 2–4 मि.ली. प्रति लीटर पानी में फार्मेलडिहाइड या दो चम्मच कार्बेन्डाजिम 1 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करके मिट्टी में अच्छी तरह से मिला कर पुनः पारदर्शी पॉलीथीन से 2 सप्ताह के लिए ढ़क दें। इस तरह पॉलीहाउस में खेत की मिट्टी में होने वाली व्याधियां दूर हो जाती हैं और पूरे फसल समय तक करेले का अच्छा उत्पादन होता है।

पॉलीहाउस में जलवायु एवं सूक्ष्म वातावरण

करेले की खेती के लिए पॉलीहाउस के अन्दर रात मे 16–18 डिग्री. सेन्टीग्रेड तथा दिन में 20–30 डिग्री. सेन्टिग्रेड तापक्रम एवं 60–80 प्रतिशत भूमि एवं वातावरण की आर्द्रता की आवश्यकता होती है। यदि तापक्रम 10 डिग्री. सेन्टीग्रेट से कम एवं आर्द्रता 30 प्रतिशत से कम पायी गयी तो परागण प्रक्रिया प्रभावित होती है और फल अनियमित आकार के बनते हैं जिससे उत्पादन घट जाता है। परन्तु बाहर की खेती में इस प्रकार का वातावरण हमेशा बना रहे तो यह सम्भव नहीं है। लेकिन पॉलीहाउस खेती को अपनाने के बाद तापक्रम, आर्द्रता, प्रकाश, कार्बनडाईआक्साइड आदि फसलों की मॉग के अनुसार प्राप्त होता रहता है जिससे उत्पादन ज्यादा मिलता है और फसलें बाहर की अपेक्षा लम्बी अवधि तक उपलब्ध रहती है।

प्रजातियों का चुनाव

पॉलीहाउस मे वर्षभर करेले की खेती के लिए प्रजातियों का चुनाव एक अहम भूमिका निभाता है अन्यथा नुकसान होने की सम्भावना बनी रहती है। करेला एक पर–परागित फसल है जिसका परागण कीटों व मुधुमक्खियों के द्वारा होता है। इसलिए हम ऐसी प्रजातियों का चुनाव करें जिनका फैलाव कम हो तथा फल वजन ज्यादा हो, जैसे की पूसा रसीला प्रजाति।

पॉलीहाउस करेले की बीज दर

औसतन कुल 4000 बीज प्रति 1000 वर्गमीटर

[1]सहायक प्राध्यापक, [2,3]शोध छात्र, सब्जी विज्ञान विभाग, गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर (उत्तराखण्ड)

पॉलीहाउस में करेला उत्पादन

क्षेत्रफल या 4 बीज प्रतिवर्ग मीटर की दर से आवश्यकता होती है।

रोपण एवं बीजाई दूरी

पॉलीहाउस में करेले के पौधो की आपसी दूरी 60 से.मी. एवं कतार से कतार की दूरी 90 से.मी. रखी जाती है।

रोपण या बीजाई का समय :

मैदानी क्षेत्रों में सितम्बर–अक्टूबर माह एवं पर्वतीय अंचलों में अगस्त व जनवरी अन्त माह सबसे उपयुक्त है।

कटाई–छँटाई एवं सहारा प्रबन्धन

पॉलीहाउस में करेला की फसल के शाखाओं की कटाई–छँटाई करना बहुत ही आवश्यक होता है। जब करेले की फसल 15–20 दिन की हो जाए तो शुरुआती नीचे से एक या दो शाखाओं को काट कर हटा देते हैं और उसके पश्चात् मुख्य तने एवं शाखाओं को रस्सी द्वारा उसकी निचले हिस्से में बांध कर तना को लपेटते हुए उपर छत की दिशा में ले जाकर बांध दिया जाता है। पुरानी व बिमार शाखाओं को समय–समय हटाते रहना चाहिए। पॉलीहाउस में करेला की खेती बिना सहारा एवं कटाई–छँटाई के नही करते हैं अन्यथा अच्छी एवं अधिक उपज नही प्राप्त की जा सकती है।

कटाई–छँटाई करते समय आवश्यक सावधानियां

- पुरानी व बीमार शाखाओं को काटते रहना चाहिए अन्यथा पोषक तत्वों का नुकसान होता है।
- प्लास्टिक रस्सी, पालीथीन टेप, सुतली की रस्सी का ही प्रयोग पौधे को लपेटने के लिए करें। उपर रस्सी बांधने के लिए ऐसे जी.आई. तार को बांधे जिसमें पौधों के वजन को रोकने की क्षमता हो।
- रस्सी लपेटते समय यह ध्यान देना चाहिए कि तने एवं शाखाओं पर निकले हुए फूल और पौधे के उपरी हिस्से टूटने न पाये क्योंकि यह दोनो कामेल होती है अन्यथा उपज में भारी कमी हो जाएगी।
- निराई–गुड़ाई करते समय जड़ों के पास बांधी हुई

कटाई–छँटाई एवं सहारा प्रबन्धन

तने की रस्सी न कटने पाए अन्यथा पौधा गिर जाएगा, जिससे उसमें लगने वाले फूल–फल गिर कर खराब हो जाएगे।

- रस्सी लपेटते समय फूल रस्सी के नीचे न दबें नहीं तो फल टूट जाएगा या फल की गुणवत्ता खराब हो जाती है।

पॉलीहाउस में आवश्यक परागण प्रक्रिया

भारत में मिलने वाली अच्छी प्रजातियों को लगायें इसमें नर एवं मादा फूल एक ही पौधे पर अलग–अलग आते हैं। करेले में परागण क्रिया को अपने हाथ से करें या पालतू बम्बल मक्खी व मधुमक्खियों के डिब्बों को पॉलीहाउस में 1–2 घण्टे के लिए रखते हैं। परागण प्रक्रिया को सुबह 7–10 बजे के मध्य कराना अच्छा पाया गया है। हाथ से परागण करने के लिए नर फूल को तोड़ कर मादा फूल के मुँह पर सटा देते हैं। इस प्रकार एक नर फूल से 2 मादा फूल का परागण कर देते है। यह प्रक्रिया फूल आने के साथ प्रतिदिन करते हैं। करेले में परागण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसके उपर पूरा उत्पादन निर्भर होता है। मादा फूल की पहचान यह होती है कि उसमें फूल के साथ छोटा सा फल लगा होता है और नर फूल में केवल लम्बी डण्डी जुड़ी होती है।

सिंचाई प्रबन्धन

किसान के पास पानी की जो भी सुविधा उपलब्ध हो उसी अनुसार से पॉलीहाउस में करेले की सिंचाई करें। परन्तु टपक सिंचाई प्रणाली लगा लें तो इससे घुलनशील उर्वरक एवं पानी दोनों को एक साथ दिया जा सकता है। ध्यान रहे कि प्रारम्भ में पौधों को पानी की कम मात्रा दें अन्यथा कमर तोड़ (डेम्पींग ऑफ) बीमारी लगने की सम्भावना बढ़ जाती है।

खाद एवं उर्वरक प्रबन्धन

पॉलीहाउस में खेतों की तैयारी के पूर्व 8–10 कि.ग्रा. प्रति वर्ग मीटर की दर से गोबर खाद, केचुऐं की खाद, पत्ती की खाद आदि को मिला कर दें। पुनः उसी के साथ 100 ग्राम. यूरिया, 200 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट, 50 ग्राम पोटाश, 100 ग्राम नीमखली एवं 1–2 चम्मच ट्राईकोडर्मा या कार्बेन्डाजिम नामक फफूँदीनाशी दवा को मिलाकर एक सप्ताह के लिए छोड़ दें। उसके बाद रोपण करें या बीज लगायें। यदि सभी उर्वरक अलग–अलग नहीं प्राप्त हो पा रहे हों तो

200 ग्राम डी.ए.पी. प्रति वर्ग मीटर की दर से भूमि में मिला लें तथा यूरिया का 1515 ग्राम पूरी फसल में प्रति वर्ग मीटर की दर से 3–4 बार भूमि में छिड़काव करें। यूरिया का छिड़काव जमीन में हमेशा नमी की उपस्थिति में करें। यदि टपक सिंचाई की सुविधा है तो पोषक तत्वों को टैंक में मिला कर दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त 19:19:19 या 20:20:20 या युरिया फास्फेट, नामक जल घुलनशील पोषक तत्वों को 1 ग्राम प्रति 4 लीटर पानी की दर फर्टीगेशन द्वारा दे सकते हैं। फर्टीगेशन क्रिया को फसल अवधि में सप्ताह में 1 बार अवश्य देते रहते हैं।

पॉलीहाउस में करेला लगाने का ढंग

पॉलीहाउस में करेले को दो ढंग से लगाते हैं। एक तो सीधा बीज की बुआई कर देते हैं। दूसरे में बीज से पौध बनाकर रोपण विधि से लगाते हैं। करेले की पौध बनाने हेतु प्लास्टिक ट्रे जिसको प्रोट्रे या नर्सरी ट्रे के नाम से भी जानते हैं या पॉलीथीन की छोटी–छोटी थैलियों के द्वारा लगाते हैं। प्रोट्रे में कोकोपीट, वर्मीकुलाइट एवं परलाइट नामक माध्यम का 3:1:1 के अनुपात में मिश्रण बनाकर बीजों को लगाते हैं। तथा पॉलीथीन बैग में कम्पोस्ट खाद, बालू एवं मिट्टी 2:1:1 के अनुपात से मिलाकर नर्सरी तैयार करते हैं। जमने के बाद समय–समय पर पानी, उर्वरक एवं दवा देते रहते हैं और करेले की नर्सरी पौध पॉलीहाउस के अन्दर 20–25 दिन में रोपण योग्य तैयार हो जाती है।

करेले के फलों की तुड़ाई एवं उपज

करेले की फसल को बीज बोने से लेकर पहली फसल आने में लगभग 55–60 दिन लगते हैं। आगे की तुड़ाई 2–3 दिनों के अंतराल पर करनी चाहिए, क्योंकि करेले के फल बहुत जल्दी पक जाते हैं और लाल हो जाते हैं। फलों को तेज धार वाले चाकू या कैंची से काटें अन्यथा खीचकर तोड़ने से पौधे के टूटने का डर रहता है। सही खाद्य परिपक्वता अवस्था में फलों का चयन व्यक्तिगत प्रकार और किस्मों पर निर्भर करता है। आमतौर पर तुड़ाई मुख्य रूप से तब की जाती है जब फल अभी भी कोमल और हरे होते हैं, ताकि परिवहन के दौरान फल पीले या पीले नारंगी न हो जाएं। कटाई सुबह के समय करनी चाहिए और फलों को कटाई के बाद छाया में रखना चाहिए।

तुड़ाई के बाद फलों को वजन एवं समान आकार के अनुसार दो ग्रेड में बॉट लेते हैं। समान वजन व आकार के फलों को 'ए' ग्रेड में तथा अन्य फलों को 'बी' ग्रेड में रखें जिससे बाजार में अच्छा पैसा मिल जाएगा। प्रति पौधा लगभग 6–8 किग्रा. उपज प्राप्त हो जाती है यदि दूसरे शब्दों में कहें तो करेले के फलों की उपज औसतन 100–120 कुण्टल प्रति 1000 वर्ग मीटर के पॉलीहाउस से मिल सकती है जिसमें से 20–30 प्रतिशत करेला बी. ग्रेड का होता है तथा 70 से 80 प्रतिशत करेला 'ए' ग्रेड का प्राप्त होता है।

बेमौसमी करेले की खेती पर लागत एवं लाभ

प्रति हजार वर्ग मीटर पॉलीहाउस के अर्न्तगत बेमौसमी करेले की खेती से निकला औसतन 100–120 कुन्तल फल उपज को यदि रूपये 30 प्रति कि.ग्रा. की दर से बेचे तो कुल औसतन मूल्य रूपये 3,00,000 से 3,60,000 लाख रूपये प्राप्त हो जाता हैं। जिसमें से यदि आप सामान्यतः 50 प्रतिशत के लगभग सम्पूर्ण खर्च को लिकाल दे या घटा दें तो रू. 1,50,000 से रूपये 1,80,000 तक कम से कम शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

भण्डारण

करेले के फलों की तुड़ाई करने के बाद सामान्यतः 2–3 दिन तक घरेलू कमरों में रखकर बेचा जा सकता है। लेकिन यदि शीतलन गृहों की सहायता से इसे भण्डारित करें तो करेले के फलों को लम्बें समय तक उनकी बाजार की गुणवत्ता बनाऐं रखते हैं।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करेः ई. मेलः *drskm23k@gmail.com* एवं मो. न. *9411159800.*

दुधारू पशुओं हेतु वर्ष भर हरा चारा उत्पादन

ओम सिंह

पशुओं की उत्पादन क्षमता उनको दिए जाने वाले आहार पर निर्भर रकती है। पशुओं को संतुलित आहार दिया जाय तो पशुओं की उत्पादन क्षमता को निश्चित ही बढ़ाया जा सकता है। हरे चारे के प्रयोग से पशुओं को आवश्यकतानुसार शरीर को विटामिन 'ए' एवं अन्य विटामिन मिलते हैं। इसलिए प्रत्येक पशुपालक को अपने पशुधन से उचित उत्पादन लेने के लिए वर्ष पर्यन्त हरा चारा खिलाने का प्रबन्ध अवश्य करना चाहिए।

पशुओं से अधिक दुग्ध उत्पादन लेने के लिए किसान भाईयों को चाहिए कि वे ऐसी बहुवर्षीय हरे चारे की फसले उगाऐं जिनसे पशुओं को दलहनी एवं गैरदलहनी चारा वर्ष भर उपलब्ध हो सकें। रबी एवं खरीफ के लिए पौष्टिक हरा चारा उगाने की योजना कृषकों को अवश्य बनानी चाहिए। खरीफ एवं रबी के कुछ पौष्टिक हरे चारे उगाने की विधि इस प्रकार हैंः

लोबिया की चारा फसल

- इसका चारा अत्यन्त पौष्टिक है जिसमें 17 से 18 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है। कैल्शियम तथा फास्फोरस पर्याप्त मात्रा में होता है। यह अकेले अथवा गैल दलहनी फसलों जैसे ज्वार या मक्का के साथ बोई जाती है।
- **लोबिया चारे की फसल के लिए भूमि व भूमि की तैयारीः** इसकी खेती दोमट या बलुई और हल्की काली मिट्टी में की जाती हैं। भूमि का जल निकास अच्छा होना चाहिए। एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा 2–3 जुताईयां देशी हल या कल्टीवेटर से करनी चाहिए।
- **लोबिया की उन्नत किस्में:** रशियन जायन्ट, एच.एफ.सी. 42–1, यू.पी.सी. 5286, 5287, यू.पी. सी.287, एन.पी.–3,बुन्देल लोबिया (आई.एम.सी. 8503), सी. 20, सी.–30.–558)
- लोबिया का बीज उपचार 2.5 ग्राम थीरम प्रति कि. ग्रा. बीज की दर से बीज उपचारित करें। लोबिया का बुआई का समयः वर्षा प्रारम्भ होने पर जून–जुलाई के महीने में इसकी बुआई करनी चाहिए।
- **लोबिया का बीज उपचारः** 2.5 ग्राम थीरम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीज उपचारित करें। लोबिया की बुआई का समयः वर्षा प्रारम्भ होने पर जून–जुलाई के महीने में इसकी बुआई करनी चाहिए।
- **लोबिया के बीज की दरः** अकेले बोने के लिए 40 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होता है। मक्का या जवार के साथ मिलाकर बुआई के लिए 15–20 कि.ग्रा. बीज प्रयोग करना चाहिए।
- **लोबिया में उर्वरकः** बुआई केस मय 25–30 कि. ग्रा. नत्राजन तथा 30–40 कि.ग्रा. फास्फोरस, 15–20 कि.ग्रा. पोटाश देने के लिए इफको एन.पी. के. 120 कि.ग्रा. एवं 35 कि.ग्रा. यूरिया प्रति हैक्टेयर प्रयोग करना चाहिए।
- **लोबिया की उपजः** 250–300 कुन्तल हरे चारे की उपज प्राप्त होती है।

ग्वार की चारा फसल

- ग्वार शुष्क क्षेत्रों के लिए पौष्टिक एवं फलीदार चारे की फसल है। इसे प्रायः ज्वार एवं बाजरे के साथ मिलाकर बो सकते हैं।
- **ग्वार की उन्नत किस्में:** टाइप–2, एफ.ओ.एस. 277 एवं एच.एफ.सी–119, एच.एफ.सी.–156, बुन्दले ग्वार–1, आई.जी.आर.आई–212–9, बुन्देल ग्वार–2
- **ग्वार की बुआई का समयः** प्रथम मानसून के

वरिष्ठ वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग, पशुधन एवं उत्पादन एवं प्रबन्धन, भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान, संस्थान, इज्जतनगर, बरेली, उत्तर प्रदेश

बाद जून या जुलाई बुआई का उपयुक्त समय है।

- **ग्वार की बीज दरः** शुद्ध फसल के लिए 40 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर मिलवां फसल के लिए 15–16 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर रखी जाती है।
- **ग्वार में उर्वरकः** 120 कि.ग्रा. एन.पी.के. 12:32:16 प्रति हैक्टेयर की दर से बुआई के समय प्रयोग करने पर फसल अच्छी होती है।
- **ग्वार चारे की उपजः** हरे चारे की औसत उपज 150–225 कुन्तल प्रति हैक्टेयर मिलती है।

बाजरे की चारा फसल

- **बाजरा की उन्नत प्रजातियांः** संकर में पूसा–322, पूसा–23, संकुल में राज–171, डब्लू. सी.सी.–75 चारे के लिए उपयुक्त हैं।
- **बीज दरः** शुद्ध फसल के लिए 10–12 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। मिलवां फसल में 2:1 अनुपात में बाजरा तथा लोबिया की बुआई की जाती है।
- **उर्वरकः** 100 कि.ग्रा. नत्राजन, 50 कि.ग्रा. फास्फोरस एवं 50 कि.ग्रा. पोटाश हैक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए 100–120 कि.ग्रा. इफको एन.पी.के. दे सकते हैं। बुआई के समय, 175 कि.ग्रा. यूरिया प्रथम तथा द्वितीय कटाई के लिए दें।
- सिंचाई प्रायः वर्षाकाल में बोई गई फसलों की सिंचाई की आवश्यकता नही पड़ती है।
- **उपजः** हरे चारे की औसत उपज 400–500 कुन्तल प्रति हैक्टेयर होती है।

बरसीम चारा फसल का उत्पादन

बरसीम चारे की बुआई अक्टूबर के पहले पखवारे में करने से पशुओं को हरा चारा दिसम्बर से मई तक मिलता रहता है। वरसीम मक्का, धान, ज्वार या बाजरा के बाद आसानी से बोई जा सकती है।

- **खेती की तैयारीः** बरसीम की खेती सभी भूमियों में की जाती है, परन्तु सामान्यतः भारी दोमट मिट्टी जिसकी जलधारण क्षमता अधिक होती है। इसकी खेती के लिए उपयुक्त है। धान के खेत प्रायः वरसीम की बुआई के लिए ठीक रहते हैं। भूमि का पी.एच. मान 6.0 या इससे अधिक होना चाहिए। दो–तीन बार हैरो ख्लाकर खेती की मिट्टी भुरीभुरी कर लेना चाहिए। खेत का समतल होना वरसीम की खेती के लिए अनिवार्य है। बोने से पहले छोटी–छोटी क्यारियां बनाना चाहिए। क्यारी की लम्बाई अधिक चौड़ाई 4–5 मीटर से अधिक नहीं होना चाहिए।
- **वरसीम की प्रजातियांः** वसीम की वरदान जे.वी. 1 तथा वी.एल.–1, वी.एल.–10, जे.एच.वी.–146 प्रमुख प्रजातियां हैं।
- **बीज दर एवं बीजोपचारः** 25–30 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता प्रति हैक्टेयर होती है। यदि 1 कि. ग्रा. प्रति हैक्टेयर चारे वाली सरसों मिलकार बुआई की जाय तो पहली कटाई में अच्छी मात्रा में चारा प्राप्त किया जा सकता है। प्रायः वरसीम के बीज के साथ कासनी का बीज मिला रहता है। अच्छे बीज उत्पादन के लिए यह आवश्यक है कि शुद्ध बीज बोया जाय। यदि कासनी से मिश्रित बीज को 5–10 प्रतिश तनमक मिले घोल में डाला जाए तो कासनी के बीज पानी में तैरने लगते हैं और उन्हे सरलता से प्रथक किया जस कात है। यदि किसी खेत में पहनी बार वरसीम बोई जा रही है तो बोने से पूर्व वरसीम कल्चर द्वारा बीज का उपचार करना अति आवश्यक है।
- **उर्वरकः** 30 कि.ग्रा. नत्राजन एवं 80 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हैक्टेयर की दर से 175 कि.ग्रा. डी.ए.पी. एवं पहली, दूसरी तथा तीसरी कटाई के बाद 100 कि.ग्रा. यूरिया प्रति हैक्टेयर देना चाहिए।

बरसीम की कटाईः प्रथम कटाई 50–55 दिन बाद करना फिर 30 दिन के अन्तर पर कटाई की जा सकती है। इस प्रकार 4–5 कटाई की जा सकती है।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करेः ई. मेलः *omsingh1964@gmail.com* एवं मो. न. *8979936375.*

पादप परजीवी सूत्रकृमि जनित रोग एवं उनका प्रबंध

शिल्पी रावत[1], सत्य कुमार[2], मनीषा देव[3] एवं विजय जोशी[4]

फसलों में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करने वाले अनेकों कारणों में से पादप परजीवी सूत्रकृमि महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इन सूत्रकृमियों को कृषकों का अदृश्य शत्रु कहा जाता है, क्योंकि फसलों में लगने वाले अन्य सूक्ष्म कीटों की भांति ही इन्हें देखा नहीं जा सकता हैं तथा ये जीव मृदा में रहकर पौधों की जडों पर आक्रमण करते हैं। पादप–परजीवी सूत्रकृमियों द्वारा लगभग सभी प्रकार की फसलों पर आक्रमण होता है।

पादप रोग विशेषज्ञ इन सूत्रकृमियों से उत्पन्न पादप रोगों में वृद्धि का मुख्य कारण मृदा में प्राकृतिक जैविक असंतुलन को मानते हैं। प्रस्तुत लेख में पादप–परजीवी सूत्रकृमि जनित रोगों एवं उनके नियंत्रण हेतु प्रबंधन विधियों पर ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की गई हैं।

वर्तमान में पूर्वकाल की अपेक्षा इन पादप–परजीवी सूत्रकृमियों की समस्या विभिन्नन फसलों जैसे– टमाटर, बैंगन, मिर्च, चुकंदर, प्याज, आलू, अरहर, लोभिया, धान, गेंहू अमरूद, अनार इत्यादि में दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही हैं। इन समस्याओं के कारणें में सघन कृषि, उर्वरकों का अत्यधिक या असंतुलित प्रयोग, अविवेकपूर्ण कीटनाशी, कवकनाशी, सूत्रकृमिनाशी, खरपतवारनाशी आदि रसायनों का प्रयोग, कार्बनिक खादों के प्रयोग में कमी, आर्थिक लाभ कमाने हेतु किसी विशेष फसलचक्र को लगातार अपनाना, प्रयोग में लायी जाने वाली विभिन्न फसलों की प्रजातियों में विभिन्नता की कमी, जल स्रोत का अत्यधिक एवं अव्यवस्थित प्रयोग और जलवायु परिवर्तन (खरीफ फसलकाल में अतिवृष्टि, अनावृष्टि और रबी फसलों की परिपक्वता के समय तापवृद्धि) आदि प्रमुख कारण हैं। इन सूत्रकृमियों के कारण विभिन्न फसलों में आर्थिक हानि के पर्याप्त आंकड़े एवं उदाहरण हमारे देश ही नहीं वरन् संपूर्ण विश्व स्तर पर है। इनसे लगभग 12.37 प्रतिशत तक औसत कृषि उत्पादन हानि का अनुमान लगाया गया है, जबकि हानि का स्तर विभिन्न्न कारकों जैसे– मृदा प्रकार, फसलों की प्रजातियां, सूत्रकृमियों का प्रकार एवं वर्ग, मृदा एवं वायुमंडलीय वातावरण आदि पर आधारित होता है।

विभिन्न फसलों के प्रमुख पादप–परजीवी सूत्रकृमि

- जड़ गांठ रोग–यह रोग *मेलॉइडोगाइन* नामक सूत्रकृमि से धान, गेहूं, जौं, कपास, अरहर, मटर, भिंडी, बैंगन, कदद्, कुल की सब्जियों एवं फसलों आदि में होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण ग्रसित पौधों की जड़ों पर गांठों का बनना जिसे जड़ों की पानी से धुलाई करने पर स्पष्ट तौर पर स्वयं देख सकते हैं। सब्जी फसलों में जड़ गांठ खेत में सूत्रकृमि रोग के लक्षणों में रोगग्रस्त पौधों की पत्तियों का पीला पड़ना, पौधों का मुरझाना और पौधों का बौना रह जाना आदि हैं। पौधे को उखाड़कर देखने पर यह दिखता है कि जड़ सीधी न होकर आपस में गुच्छा बना लेती हैं, जड़ों पर गांठ बनकर फूल जाती हैं, पौधों में फूल व फल देरी से लगते हैं, फलों का आकार छोटा हो जाता है व उसकी व्यवसायिक गुणवत्ता कम हो जाती है।
- **गेहूं एवं जौ का मोलया रोग**– यह *हेटेराडेरा अवेनी* नामक सूत्रकृमि द्वारा जनित रोग है। इस रोग में पौधे छोटे रह जाते हैं, रोगी पौधे पीले पड़ने लगते है और इनकी पत्तियां पतली एवं संकरी हो

[1]सह प्राध्यापक; [2]प्राध्यापक; [3]स्नातकोत्तर छात्रा; [4]पीएच.डी. छात्र, पादप रोग विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, गो.ब. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड

जाती हैं। ऐसे पौधों की जड़ों को धोकर निरीक्षण करने पर जड़ों की सतह पर सफेद रंग की अंडाकार मादाओं को देखा जा सकता है बाद में यही मादाएं भूरे रंग की पुटी में परिवर्तित हो जाती हैं।

- **धान का मेनटेक रोग**— यह रोग *हिर्समनिल्लाओराइजी* नामक सूत्रकृमि द्वारा उत्पन्न होता है, तथा धान कि उपज को 30 प्रतिशत तक घटा देता है। इस रोग में सूत्रकृमि पौधों की जड़ों में सुरंग बना देता है जिस से जड़ों को अत्यधिक हानि पहुंचती है। ऐसी जड़ ग्लानीकरण के उपरांत खैर या भूरे रंग में बदल जाती हैं। जड़ों के प्रभावित होने से रोग ग्रसित पौधे अपनी वांछित बढ़वार को खो देते हैं।
- **धान का अफरा रोग**— इन रोग का रोगकारक *डाइटीलेंकसस ऐंग्स्टस* नामक सूत्रकृमि हैं इस रोग की पहचान, पत्तियों का पीलापन और ऊपरी सतह पर धारियों को देखकर की जाती हैं यह दो प्रकार का होता है। फूला (स्वेलन) अफराः इस तरह के अफरा के लक्षणों में बालियां पत्तियों के आवरण में बंद रहती हैं, जिसके कारण संक्रमित भाग के तने से शाखाऐं निकलने लगती हैं। परिपक्व अफराः इस प्रकार के अफरा रोग में बालियां तो सामान्य रूप में निश्कासित होती है, लेकिन दाने केवल बाली के ऊपरी भाग में ही बनते हैं।

पादप परजीवी सूत्रकृमि प्रबंधन

- **मृदा सौर्यीकरण**— इस विधि में विभिन्न मोटाई वाली पारदर्शी पॉलीथीन शीट (50—100 मि.मी. माईक्रोन) को मृदा सतह पर मई माह में 4—6 सप्ताह तक फैलाने से मृदा तापमान मे बाहरी तापमान की अपेक्षा 8^{0}—12^{0} सेलस्यिस हो जाता है। इस प्रक्रिया से मृदा तापमान बढ़ने से मृदा में पड़े सूत्रकृमि एवं सूत्रकृमियों के अण्डे तथा अन्य हानिकारक सूक्ष्मजीवों की संख्या में भारी कमी होती है। यह उत्सर्जित तापमान तापसंचेतन मृदोढ़ रोगकारकों को निष्क्रिय कर देता है अतः इस विधि का प्रयोग तापसंचेतन पादप—परजीवी सूत्रकृमियों के प्रबंधन में विक्षत सूत्रकृमि के विरूद्ध बहुत ही कारगर सिद्ध हुई है।
- किसानों को अपनी फसलों को सूत्रकृमियों से उत्पन्न रोगों से बचाने के लिए खेत में 20—25 टन प्रति हैक्टेयर की दर से भलीभंति सड़ी हुई गोबर अथवा कम्पोस्ट की खाद अवश्य ही प्रयोग करनी चाहिए।
- फसल रोपाई या बुंआई के तीन सप्ताह पूर्व, खेत में नीम की खली को 5—10 कुन्तल प्रति हैक्टेयर तथा सरसों, मूंगफली, करंज एवं मरगोसा की खली को 27 कुन्तल प्रति एकड़ की दर मृदा में मिलाना चाहिए।
- सूत्रकृमि स्रंकमित खेतों में मार्च—अप्रैल माह में सनई अथवा ढैंचा बुवाई कर 45—60 दिनों में खेत में मिट्टी पलट हल से जुताई कर खेत में मिलाने से सूत्रकृमि के आक्रमण से फसलों को काफी हद तक बचाया जा सकता है।

भौतिक उपचार

- **गर्म जल उपचार**— यह विधि बीज एव।पौध सामग्री के ऊतकों में उपस्थित सूत्रकृमियों को मारने के लिए प्रयोग में लायी जाती है।
- **बीज की सफाई**— इस विधि का प्रयोग कर संदूशित गेहू।के बीज में ऐंग्विनाट्रिटिसाई की पिटिकाओं (गाल्स कोकल्स) को छलनी एवं सूप की मदद से अलग किया जाता है।
- **नमक के घोल का प्रयोग**— इस विधि में गेंहू के ऐग्वाइना ट्रिटिसाई की पिटिकाओं से संदूशित बीज को 20 प्रतिशत नमक के घोल में डुबोते हैं जिस से पिटिकाओं घोल की सतह पर तैरने लगती हैं। इनको एकत्रित कर पृथक कर लेने के पश्चात गेहूं को सादा ताजे जल से भलीभांति धोकर छाया में अच्छी प्रकार सुखा कर बुआई के लिए प्रयोग करना चाहिए।

कर्षण / सस्य क्रियाएं

- खेत की सिंचाई करते समय किसान को ध्यान देना आवश्यक है कि सिंचाई जल सूत्रकृमि संक्रमित खेत से स्वस्थ खेत में न जाये।
- रोग ग्रसित खेत को 2 से 3 साल तक खाली (बिना किसी भी खरपतवार व फसल के) रखें।
- सब्जी फसलों जैसे बैंगन, भिण्डी, और टमाटर की दो लाइनों के बीच में एक लाइन गेंदे टेजिट्रस माइन्युटा और टेजिट्रस पेटूला की लगायें।
- भिंडी की फसल को मूल–गांठ सूत्रकृमिक से बचाव हेतु भिंडी–तिल की अंतः खेती करें।
- बुआई के समय का चयन–आलू, चुकंदर एवं गेंहू के फसल को पिटिका सूत्रकृमि के आक्रमण से बचाने के लिए इन फसलों की अगेती बुवाई करनी चाहिए।
- मेलॉइडीगाइन ग्रमिनिकोला जनित मूल–गांठ रोग से बचाव हेतु गेहूं की समय से (नवंबर का द्वितीय पक्ष) बुआई कर ले।
- रबी फसलों की कटाई उपरांत किसान अपने खाली खेतो की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करे जिससे सूत्रकृमि के अण्डे एवं डिम्भक सूर्य के प्रकाश एवं गर्मी के सीधे सम्पर्क में आने से नष्ट हो जाते हैं।

फसल चक्र का चयन

- गेहूं एवं जौ के मोलया रोग (*हेटेराडेरा ऐंवीनी*) के नियंत्रण के लिए गाजर, चना, प्याज अथवा सरसों के साथ तीन साल का फसल चक्र प्रयोग करें।
- आलू के पुटी सूत्रकृमि (*गलवोडेरारो स्टोचिएन्सिस*) के प्रकोप से आलू की फसल को बचाने के लिए गेहूं, पत्तागोभी, मटर, चना अथवा बीन्स के साथ तीन साल से अधिक का फसलचक्र अपनाएं।
- कपास की फसल को बिलकारी सूत्रकृमि से बचाव के लिए अरेंडी के साथ प्याज, लहसुन, शलगम, शिमला मिर्च और गाजर उगाकर दो वर्ष का फसलचक्र प्रयोग करे।
- धान की फसल को तना सूत्रकृमि (*डिटायलेन्कस ऐंगस्टस*) से बचाव के लिए धान–जूट का फसलचक्र अपनाए।
- धान की मूलविक्षत एवं जड़गांठ के आक्रमण सूत्रकृमि से बचाव के लिए धान–परती फसलचक्र अपनाए।
- फसलों में सूत्रकृमि जनित रोगों निवारण के लिए शत्रु पौधे जैसे जंगली सरसों, गेंद का प्रयोग करे।
- कृषकों को वृक्षों की सड़ी हुई पत्तियों से बनी बगीचा मृदा आदि को गोबर अथवा कम्पोस्ट की खाद, खलियों और हरी खाद का प्रयोग करने से सूत्रकृमि परभक्षी कवकों जैसे *डेक्टाइलेरिया, डेक्टाइलेला, अर्थोबोट्राइस, मोनोस्पोरिया, पेशिलोमाईसीज, केटीनेरिया, एवंहेप्टोग्लोसा* आदि मृदा में रहकर पादप परजीवी सूत्रकृमियों का जैविक नियंत्रण करते हैं।
- सब्जियों जैस टमाटर, बैंगन और भिंडी आदि मे मूल–गांठ सूत्रकृमि से बचांव हेतु कार्बनिक अवशेषों का प्रयोग करना चाहिए। जैसे नीम की पत्तियों से मृदा को उपचारित करे तथा जई अथवा तीसी के अवशेषोंको 10 टन प्रति एकड़ की दर से या सरसों एवं शलजम के अवशेषों के 1/8 इंच के टुकड़ों को मृदा में मिलाना चाहिए। ऐसा करने से फसलों पर सूत्रकृमि आक्रमण को कम करने में मदद मिलती है।

भारतवर्ष में हमारी फसलों के उत्पादन को सूत्रकृमि द्वारा लगभग 102039.79 लाख रू. प्रतिवर्ष हानि पहुँचाई जाती है। इस हानि का स्तर विभिन्न कारकों आदि पर आधारित होता है। इसलिए यह नितांत आवश्यक है कि पादप–परजीवी सूत्रकृमियों द्वारा विभिन्न फसलों में उत्पन्न रोगों का उचित रोग प्रबंधन विधियों को अपना कर इन की संख्या को मृदा में नियंत्रित कर किया जा सकता है जिससे कृषकों की आय, फसलों की प्रति इकाई उत्पादकता बढ़ायी जा सके।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करेः ई. मेलः *rawatshilpi19@gmail.com* एवं मो. न. *9457555638.*

टर्मिनालिया अर्जुन के औषधीय गुण

सिमरन कौर अरोरा[1] एवं आस्था बालोधी[2]

टर्मिनालिया अर्जुन एक खास पौधा है जिसका आयुर्वेदिक दवा प्रणाली में अत्यधिक प्रभाव है। औषधि रूप में प्रयुक्त अर्जुन का संदर्भ अथर्ववेद में भी दिया गया है। अर्जुन के शास्त्रीय नाम धवला, काकुभा, नादिसारजा, वीरवृक्ष, पार्थ, इंद्राद्रू हैं। अर्जुन भारतीय महाद्वीप में पाया जाने वाला एक ऊँचा एवं सदा सदाबहार पेड़ है। यह पेड़ अकसर 100 फीट की ऊँचाई तक बढ़ता है व पीले फूलो एवं पतले पत्तों से सुशोभित रहता है। अर्जुन के छाल की सतह बाहर से सरल, धूसर, चिकनी व भीतर से मोटी मुलायम और लाल रंग की होती है।

अर्जुन की छाल में कई रसायनिक यौगिक पाए जाते हैं जिनमें जैसे की–अर्जुनिक एसिड, अर्जुनेटिन, टर्मिनोइक एसिड, अर्जुनोलिटिन, अर्जुननिन, अर्जुनलुकोसाइड (I, II और III)। छाल में टैनिन युक्त कैटेचिन, गैलोकैटेचिन, एपिक्टिन और एपिगैलोकैटेचिन पाए जाते हैं। पारंपरिक चिकित्सको का मानना है की अर्जुन की छाल के चूर्ण को पानी में उबालने व उस पानी द्वारा भाप लेने से सिर दर्द ठीक होता है। छाल के काढ़े का उपयोग अल्सर धोने के लिए किया जाता है, जबकि छाल की राख को सर्पदंश और बिच्छू के उपचार के लिए उपयोग में लाया जाता है।

औषधीय पौधों को मानव रोग के उपचार के लिए सभी पारंपरिक चिकित्सा पद्धति के प्रमुख घटक के रूप में मान्यता दी गई है। वर्तमान में भी अधिकांश लोग पारंपरिक दवाओं की तुलना में जड़ी–बूटी युक्त दवाओं का चयन करते है। प्राचीन काल से लेकर आज तक औषधीय दवा, सिंथेटिक समकक्षों की तुलना में स्वास्थवर्धक है। पिछले कुछ दशकों में तेजी से आर्थिक विकास तथा जीवनशैली में बढ़ते पश्चिमीकरण के साथ, भारतीयों में बीमारियों का प्रसार का अनुपात बढ़ गया है। हृदय रोग मृत्यु दर का प्रमुख कारण बना हुआ है जो दुनिया भर में होने वाली सभी मौतों का लगभग 30 प्रतिशत है। उच्च रक्तचाप, मधुमेह मेलिटस, डिस्लिपिडेमिया और अधिक वजन/मोटापा जैसी जीवनशैली संबंधी बीमारियां हृदय रोग के विकास में प्रमुख कारक है।

हाल ही में दुनिया कोविड–19 के संक्रमण से जूझ रही है, जिसमें हृदय संबंधी व श्वसन प्रणाली से पीड़ित लोगों को घातक परिणामो से बचाने की आवश्यकता है। ऐसे में अर्जुन की छाल निम्नलिखित प्रणालियों को चुस्त रखने में सहायक है।

हृदय प्रणाली– अनादि काल से अर्जुन विभिन्न प्रकार की हृदय संबंधी समस्याओं से निपटने के लिए पसंदीदा जड़ी बूटी रहा है। यह दिल और उसकी मांसपेशियों को पोषण देने में अत्यधिक प्रभावी है। अर्जुनाक्षीरपाक का उपयोग हृदय रोगों के इलाज के लिए होता है, इसे बनाने के लिए अर्जुन की छाल का चूर्ण, गाय का दूध और पानी का संयोजन किया जाता है।

पाचन तंत्र– अर्जुन की छाल पाचन तंत्र की उचित स्थिति बनाए रखने में भी फायदेमंद है। इसके कसैले गुण के कारण, यह दस्त और पेचिश की स्थिति में अत्यंत मददगार है। यह शरीर के क्रमाकुंचन गतिविधियों को नियंत्रित करता है और मल के निर्जलीकरण की अनुमति नहीं देता। यह पाचक अग्नि को बढ़ाता है और पाचक रसों को ठीक करता है, जो एसिड अपच को रोकने में मदद करता है और पोषक तत्वों के इष्टतम पाचन और अवशोषण को बढ़ावा देता है।

श्वसन प्रणाली – अर्जुन की छाल को बलगम की

[1]सहायक प्राध्यापक; [2]शोध विद्यार्थी, खाद्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड

अर्जुन

अतिरिक्त मात्रा को बाहर निकालने में भी लाभकारी माना जाता है। यह बलगम के संचय को रोकने में भी सहायक है, जिससे श्वसन प्रणाली को चुस्त रहने में सहायता प्राप्त होती है। यह फेफड़ों को संक्रमण से दूर रखने में व फेफड़ों की क्षमता बढ़ाने में सहायक है।

तंत्रिका प्रणाली – अर्जुन की छाल को तंत्रिका टॉनिक भी माना जाता है। यह तंत्रिका तंत्र को शक्ति प्रदान करता है व सजगता को भी मजबूत करता है।

उत्सर्जन प्रणाली– यह पालीयूरिया की स्थिति में सहायक है व बड़ी हुई मूत्र आवृत्ति को नियमित करने में भी सहायक है। उत्सर्जन प्रणाली से पथरी निकालने में छाल का मूत्रवर्धक प्रभाव लाभकारी होता है। यह उत्सर्जन प्रणाली को चुस्त रखने में मदद करता है व संक्रमण में रोकथाम का कार्य करता है।

त्वचा– यह त्वचा संबंधी सभी प्रकार की समस्याओं के इलाज में उपयोगी है। एक्जिमा, खुजली, चकत्तों के निशान व सोरायसिस जैसी गंभीर त्वचा की स्थिति में भी अर्जुन के नियमित उपयोग से उपचार किया जा सकता है।

अर्जुन की छाल में चिकित्सीय गुण होने के कारण इसका उपयोग सदियों से किया जा रहा है। अर्जुन एक असधारण जड़ी–बूटी है जो स्वास्थ के लिए लाभकारी है। कई बीमारियों के इलाज के लिए भारतीय प्रयागत चिकित्सा प्रणाली में कई औषधीय पौधों की व्याख्या की गई है, लेकिन आधुनिक बीमारियॉ जैसे कोविड–19 के प्रकोप के बाद से, अलग–अलग पारंपरिक हर्बल दवाओं के आशाजनक परिणामों के साथ संक्रमित रोगियों के इलाज के लिए अकेले या पारंपरिक दवाओं के संयोजन में उपयोग किया जा रहा है। इस महामारी के दौरान औषधीय पौधों ने चिकित्सा पद्धति को नए आधार दिए है।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करेः ई. मेलः *skarora@gbpuat.ac.in* एवं मो. न. *8884965321.*

ट्राइकोग्रामा प्रजाति एक प्रभावी जैविक कीट नियंत्रक

ऋषिपाल[1], सी.एस. प्रसाद[2] एवं गजे सिंह[3]

भारतवर्ष की आबादी का लगभग 67 प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर है। इस बढ़ती आबादी को भोजन उपलब्ध कराना हम सभी का दायित्व बनता है। और सभी प्राणी अपने भोजन के लिए पौधों पर निर्भर रहते है उसी प्रकार से कीट व पतंगे भी फसलों पर आश्रित होते है। जिसमें कुछ कीट फसलों मे अधिक मात्रा मे नुकसान पहुॅचाते हैं इन्हे नाशीजीव की संज्ञा दी गयी है। फसलो के इन नाशीजीवों को नियत्रण करते के लिये ज्यादातर किसान कीट नाशकों पर निर्भर रहते हैं और वे इनका अंधाधुंध प्रयोग करते हैं। इस अवैज्ञानिक कार्य से इसके दुष्परिणाम जैसे नाशीजीवो के इन रासायनो के प्रति सहनशीलता तथा भूमि, जल एंव वायुमण्ड़ल मे प्रदूषण होने लगा यह रसायन फसलों के माध्यम से भोजन श्रृंखला में पहुचने के कारण हमारे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालते है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन का अनुमान है कि संसार भर मे हर वर्ष लगभग 30 लाख लोग कीटनाषको के विष से गस्त्र होते है और जिसके परिणामस्वरूप मनुष्यों में कई प्रकार की बिमारियॅा उत्पन्न हो जाती हैं इसलिए यह नितान्त आवश्यक हो गया कि इन रसायनिक कीट विषों पर निर्भरता ठीक नहीं है इनका उपयोग केवल अपरिहार्य परिस्थिति में ही किया जाना चाहिए तथा जैविक कीट नाषियों को प्रयोग में लाया जाये।

जैविक कीटनाशको मे ट्राइकोग्रामा नामक अण्डा परजीवी का महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक बहुत ही छोटे आकार की ततैया होती है। जो कि एक सफल अण्डा परजीवी है, इस परजीवी कीट का प्रयोग गण लेपिडोप्टेरा के अधिकतर कीटों के नियत्रण के लिए सफलता पुर्वक किया जा सकता है। जिनमे से *ट्राइकोग्रामा जैपोनिकम, ट्राइकोग्रामा किलानिस, ट्राइकोग्रामा ब्रैसिलियेन्सिस, ट्राइकोग्रामा प्रेटियोसम, ट्राइकोग्रामा वैक्टरी, ट्राइकोग्रामा क्रिकपत्री* आदि प्रमुख है, जिसमें निम्न फसल इस प्रकार है– गन्ना, कपास, धान, भिण्डी, वैंगन व दलहनी सब्जी, दलहनी (चना, मटर, अरहर), मक्का, टमाटर व गोभी वर्गीय।

ट्राइकोग्रामा अण्ड़ परजीवी

अंडे का परजीवी यह ट्राइकोग्रामा प्रजाति की छोटी ततैया है इसकी लम्बाई 0.4–0.7 मि.मी. होती है। इसका विकास पोषक कीट के अण्डे पर निर्भर करता है। एक ट्राइकोग्रामा ततैया लगभग 200 प्रकार के नुकसान देय कीडों के अण्डो को परजीवित करके उन्हें नष्ट कर देते है जिससे लगभग 80–100 प्रतिशत कीट द्वारा होने वाले नुकसान से बचाता है।

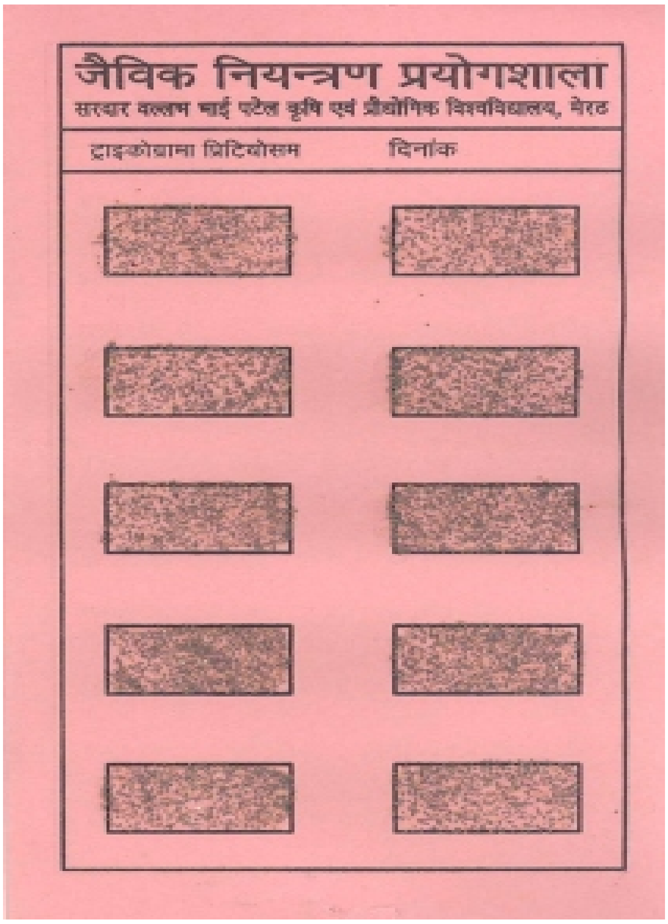

[1]प्रक्षेत्र पर्यवेक्षक; [2]प्राध्यापक प्रभारी; [3]सह प्रध्यापक, जैविक नियंत्रण प्रशेगशाला (कीट विज्ञान विभाग), वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविधालय–मेरठ, उ.प्र.

निम्न फसलो में ट्राइकोग्रामा प्रजातियों का फसलवार प्रयोग–

क्र.	फसल का नाम	कीट	परजीवी प्रजाति	प्रयोग विधि
1	गन्ना	अगेती तना वेधक, प्ररोह वेधक, पोरी वेधक व गुरूदासपुर वेधक	*ट्राइकोग्रामा किलोनिस*	बुवाई के 45 से 90 दिन बाद सप्ताह के अन्तराल पर 4–6 बार 50,000 अण्डे/है की दर से प्रयोग करे।
		चोटी वेधक	*ट्राइकोग्रामा जेपोनिकम*	बुवाई के 60 दिन बाद 50,000 अण्डे/है. की दर 8–10 दिन के अन्तराल पर 6 बार प्रयोग करे।
2	कपास	फलवेधक, लालसूड़ी धब्बेदार सूड़ी	*ट्राइकोग्रामा किलोनिस*	बुवाई के 45 दिन बाद या कीट के दिखाई देने पर 1,00,000 अण्डे/हे0 की दर 7 दिन के अन्तराल पर 6 बार प्रयोग करे।
3	धान	तनावेधक, पत्तीलपेटक	*ट्राइकोग्रामा जेपोनिकम*	पौध रोपाई के 30 दिन बाद या कीट के दिखाई देने पर 50,000 अण्डे/हे0 की दर से 4–6 के अन्तराल पर प्रयोग करे।
4	भिण्डी, बैंगन व दलहनी सब्जी	परोह वेधक एंव फल वेधक	*ट्राइकोग्रामा जेपोनिकम, ट्राइकोग्रामा किलोनिस*	पौध बुवाई के 30 दिन बाद या कीट के दिखाई देने पर 50,000 अण्डे/हे0 की दर से 7 दिन के अन्तराल पर 4–6 बार प्रयोग करे।
5	मक्का	तनावेधक	*ट्राइकोग्रामा किलोनिस*	बुवाई से 15 दिन बाद 50,000 अण्डे/है. की दर से 7 दिन के अन्तराल पर 4–5 बार प्रयोग करे।
6	दलहनी (चना, मटर, अरहर)	फलवेधक	*ट्राइकोग्रामा जेपोनिकम, ट्राइकोग्रामा ब्रैसिलियेन्सिस, ट्राइकोग्रामा किलोनिस*	पौध बुवाई के 30 दिन बाद या कीट के दिखाई देने पर 50,000 अण्डे/है. की दर से 7 दिन के अन्तराल पर 4–6 बार प्रयोग करे।
7	टमाटर	फलवेधक	*ट्राइकोग्रामा ब्रैसिलियेन्सिस*	बुवाई के 45 दिन बाद या कीट के दिखाई देने पर एक सप्ताह के अन्तराल पर 4–6 बार 50,000 अण्डे/है. की दर से प्रयोग करे।
8	गोभीवर्गीय सब्जी	डी.वी.एम.	*ट्राइकोग्रामा ब्रैसिलियेन्सिस*	पौध रोपाई के 20 दिन बाद या कीट दिखाई देने पर 50,000–75,000 अण्डे/है. की दर से 7–8 दिन के अन्तराल पर 4–6 बार प्रयोग करे।

ट्राइकोग्रामा कीट की प्रमुख प्रजातियों का प्रयोग

कार्य प्रवृत्तिः मादा ट्राइकोग्रामा अपने अण्डे हानि पहुंचाने वाले कीड़ो के अण्डों में देती है और इसका जीवन चक्र अण्डों मे पूरा होता है। मादा ततैया नाशीकीट के अण्डें के बाहरी आवरण में छेद बनाकर उसमें अपने 2–3 अण्डें दे देता है। अण्डों के निषेचन होने पर ट्राइकोग्रामा के लार्वा कीड़ों के अण्डों के भ्रूण को खाकर अपना जीवन चक्र पूरा करते है। ततैया अण्डों से छेद कर बाहर निकलता है। यह गर्मियों मे 8 से 10 दिन तथा सर्दियों मे 9 से 12 दिन में अपना जीवन चक्र पूरा करता है।

लक्ष्य कीटः गन्ना, धान, कपास, दलहन, तिलहन, सब्जियों आदि के खेतो में हानि पहुँचाने वाले लेपिडोप्टेरा कीट (बेधक कीट)।

वितरण का प्रारूपः ट्राइकोग्रामा का व्यवसायिक उत्पादन एवं वितरण इस प्रयोगशाला द्वारा ट्राइकोकार्ड के रूप मे किया जाता है, जो कि पोस्टकार्ड के आकार का होता है। कार्ड पर कोइसायरा सिफेलोनिका के परजीवित अण्डें चिपके होते है। जिन पर प्रत्येक कार्ड में 20,000 से ज्यादा परजीवित अण्डें 10 पट्टियों में वितरित रहते है।

भंडारणः ट्राइकोकार्ड को 10–15 दिनों तक 5–10^{0} सेन्टीग्रेड पर फ्रिज में भंडारित कर रख सकते है अन्यथा कार्डो को सामान्य तापक्रम पर रखने पर परजीवी अपना विकास कर समय से ही बाहर निकल आते है।

उपयोग विधिः खेतो मे कीड़ों के प्रकोप का पता चलते ही इसका प्रयोग प्रारम्भ कर दिया जाता है। आक्रमित क्षेत्रों में 4 से 5 बार 50,000 से 1,00,000 व्यस्क/हैक्टेयर की दर से 10 दिन के अतंराल पर लगाते है। ट्राइकोकार्ड का प्रयोग व्यस्क निकलने से 1 दिन पूर्व सायं के समय करते है। ट्राइकोकार्ड को 10 छोटी–छोटी पट्टियों में काटकर पत्ती की निचली सतह पर स्टेपल कर देते है या पौधों की शाखाओं पर धागे से बांध देते है। व्यस्क परजीवी बाहर निकलकर पोषक कीटो के अण्डों को खोजकर उन्हें नष्ट कर देते है तथा अपनी जनसंख्या बढ़ाते है।

सावधानियां

- ट्राइकोग्रामा सांयकाल ही लगाना चाहिए।
- ट्राइकोकार्ड लगाने के 3 दिन पहले तथा 3 दिन बाद तक किसी भी कीटनाशी का प्रयोग नही करना चाहिए।
- वर्षा की सम्भावना होने पर या वर्षा होते समय टाइकोकार्ड नही लगाना चाहिए।
- ट्राइकोकार्ड के यातायात में अधिकतम सावधानी बरतनी चाहिए।
- ट्राइकोकार्ड को वयस्क निकलने से पहले ही खेतो में लगाना चाहिए।

प्रयोग से लाभः

- ट्राइकोग्रामा प्रजाति का कोई भी विषाक्त प्रभाव मनुष्यों पर नही पड़ता है।
- इसकी लागत भी कीटनाशी की अपेक्षाकृत कम होती है।
- इसके प्रयोग से कीटो में इसके प्रति प्रतिरोधक क्षमता का विकास नही होता है।
- इसके प्रयोग से लाभदायक कीटो को कोई नुकसान नहीं पहॅुचता है।
- इसके प्रयोग से वायुमण्डल में किसी प्रकार का कोई विषाक्त प्रभाव नहीं पड़ता है।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करेः ई. मेलः *rishipal.biocontrol@gmail.com* एवं मो. न. *9412421702.*

प्रगतिशील किसान की सफलता की कहानी

यशपाल सिंह[1], मनोज कुमार भट्ट[2] एवं आलोक सिंह जयड़ा[3]

श्री राव गुलाब सिंह लोधी, जिनकी उम्र लगभग 62 वर्ष है, एक बहुत ही अनुभवी एवं प्रगतिशील किसान हैं, जो मध्य प्रदेश राज्य के नरसिंह पुर जिले में स्थित नन्हे गाँव गौर के रहने वाले हैं। उन्होंने ग्यारहवीं तक की शिक्षा प्राप्त की है। उनके पास लगभग 7.5 हैक्टेयर जमीन है जहाँ पर वह खेती करते हैं जिसमें मुख्य रूप से गेंहूँ, दलहनी फसलों, बागवानी (आम करौंदा आंवला एवं नींबू), कृषि वानिकी, पशुपालन (गाय व भैंस), मधुमक्खी पालन, रेशम कीट पालन, डेयरी कुक्कुट एवं मत्स्य पालन का कार्य करते हैं।

प्रगतिशील किसान के पास सिंचाई हेतु 2 ट्यूबवेल, नहर एवं स्प्रिंकलर पद्धति से 100 प्रतिशत सिंचित रकबा मौजूद है। इनके पास खेती संबंधी मशीन जैसे ट्रेक्टर कल्टीवेटर, सीड ड्रिल, प्लाउ, पावरस्प्रेयर पम्प, थ्रेसर व अन्य उन्नत कृषि उपकरण मौजूद हैं।

कृषक का नाम	राव गुलाब सिंह लोधी
ग्राम	नन्हेगांव गौर
तहसील	गोटेगांव
जिला	नरसिंहपुर
मोबाइल नम्बर	9303950547
पत्र व्यवहार का पता	ग्राम नन्हेगांव, पोस्टः करकबेल (गोटेगांव) जिला नरसिंहपुर, 487114 मध्य प्रदेश

विकसित अभिनव कृषि प्रौद्योगिकी का विवरण

राव गुलाब सिंह लोधी जी ने मसूर सह सरसों के साथ जैविक कीट नियंत्रण व परागण को बढाने हेतु मधुमक्खी पालन तकनीक नरसिंहपुर जिले में विगत कई वर्षो से मसूर की उन्नत खेती कर रहे है। वह नए प्रयोगों द्वारा लागत मूल्य कम करके ज्यादा से ज्यादा मसूर का उत्पादन प्राप्त करने का प्रयास करते रहते हैं। रबी के मौसम में मसूर के उत्पादन में उक्ठा की समस्या प्रारम्भ में व दिसम्बर जनवरी में पाला की समस्या देखी जाती हैं उन दोनों समस्याओं के नियंत्रण के लिए उन्होने एक अभिनव प्रयोग किया। जिसमें मसूर की नई किस्म को विभिन्न शोध संस्थाओं से लेकर अपने खेत में क्राप केपटेरिया के रूप में लगाकर परीक्षण किया लगातार किस्मों की उपज व रोग प्रतिरोधक क्षमता को ध्यान में रखते हुए हर वर्ष किस्म को अपने खेत में प्रयोग किया इस चयनित किस्म के बीज को अगले साल बड़े रकबे में मसूर की खेती के लिए उपयोग करते हैं।

खेती में अपनाई गई नवीन तकनीकी

वर्ष 2019–2020 में मसूर की उन्नत किस्मों (RVL31, IPI316, RVL11-6) व सरसों की उन्नत किस्म (RAJ31 and Pusa Bold) के परीक्षण के उपरांत वर्ष 2020–21 में RVL 31 के साथ चने Bold को अंतवर्तीय फसल के रूप में उपयोग किया गया। उचित किस्मों के चयन के बाद अपने खेत की मिट्टी का हर तीन वर्ष में परीक्षण कराते हैं। परीक्षण के अनुसार फसलवार जैविक एवं रासायनिक खाद का प्रयोग करते हैं। फसल उत्पादन उपरांत फसल अवशेष में आग न लगाकर खेत में मल्चिंग का कार्य करते हैं, जिससे भूमि में पर्याप्त मात्रा में कार्बनिक पदार्थ मिल जाता है। साथ ही जैव उर्वरकों का प्रयोग जुताई के साथ करते है, जिससे उकठा में प्रभावी नियंत्रण में कारगर साबित होता है। कल्टीवेटर द्वारा ऑडी खड़ी जुताई उपरांत 9 इंच पर मसूर जे एल 3

[1]युवा वैज्ञानिक (डी.एस.टी.) पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय; [2]वरिष्ठ शोध अध्येता; [3]शोधार्थी, परास्नात्कोत्तर, सस्य विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, गो.ब. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड

किस्म की बीज उपचार उपरांत अनुशंसित रासायनिक जैविक खाद डालकर बौनी की एवं 20 फुट में एक लाइन पूर्व से पश्चिम दिशा मे सरसों की एक लाइन किस्म पूसा बोल्ड लगाई, इस तरह मसूर में सरसों लगाने के समय दिसंबर–जनवरी माह में उत्तर भारत की जो ठंडी हवाएं आती है वह ऊंची सरसों होने से नीचे बढ़ने वाली मसूर में पाला से कोई नुकसान नहीं होता है। मसूर में सरसों की एक पंक्ति लगाना जैविक कीट नियंत्रण में भी बहुत बड़ा सहायक होता है इसमें सरसों पर चिड़िया बैठकर मसूर में लगने वाले कीटों को खा जाती है जिससे फसल में कीट व्याधि का जैविक नियंत्रण हो जाता है जिससे कीट नियंत्रण में रसायनों के प्रयोग से लागत मूल्य में भारी कमी आ जाती है साथ ही खेत में तीन फिट के डंडे प्रति एकड गाड़कर उसके ऊपर छोटे मटकों को उल्टा करके सफेद रंग से रंग दिया जाता है। जिसके अंदर मधुमक्खियाँ अपना घर बना लेती हैं और मसूर व सरसों में पुष्पन के समय परागण में मदद करती है, जिससे मसूर और सरसों में 3 से 5 प्रतिशत उपज में वृद्धि प्राप्त होती है।

दलहनी फसलों में तिलहनी फसल का सुरक्षा कवच

दलहनी फसलों की कतारों को उत्तर से दक्षिण दिशा में लगाया। इन कतारों को 20 फुट की सरसों की कतारों से बाँटा गया अर्थात सरसों की कतार पूर्व से पश्चिम दिशा में लगाई गई, जिससे निम्न लाभ प्राप्त हुआ।

1. सरसों की अतिरिक्त फसल प्राप्त हुई।
2. ठंड के मौसम मे उत्तर से दक्षिण चलने वाली शीत लहर से दलहनी फसल की सुरक्षा हुई। जिससे होने वाले नुकसान से बचा जा सका।
3. कीडों और इल्लियों से प्रबंधन हेतु जो टी गार्ड लगाये जाते हैं, उनकी जगह सरसों के पौधे ने ले ली और उस पर पक्षियों द्वारा बैठकर कीडों और इल्लियों को खाकर फसल की सुरक्षा की।
4. सरसों की फसल पर होने वाले पुश्पों में मधुमक्खियाँ सबसे अधिक आती है, जो दलहनी पुश्पों पर भी जाती हैं जिससे परागण होकर उपज में वृद्धि हुई।
5. सरसों को स्थानीय कच्ची घानी में तेल निकालकर उपयोग किया एवं खली को पशुओं को देकर दुग्ध उत्पादन में वृद्धि हुई।

मौसम में लगातार हो रहे परिवर्तन के कारण कई बार कम वर्षा या मॉवठ की वर्षा जनवरी फरवरी में हो जाती है जिससे मसूर की फसल पर विपरीत प्रभाव पडता है। इसे दूर करने के लिए उन्होंने खरीफ के समान रबी में रिजफरों पद्धति में मसूर, सरसों की खेती चालू की जिसमें 6 इंच की दूरी पर दो लाइन व बाद में कूणों के बाद 13 इंच का अंतर रखकर मसूर की बोनी की व हिरण व जंगली सुअर के बढते प्रकोप को देखते हुए 20 फीट की जगह पर 30 फीट की दूरी पर सरसों पूसा बोल्ड व राज 31 की खेती की। इस तरह मसूर व सरसों की खेती द्वारा जिले में सर्वाधिक मसूर उत्पादन 32.50 कुन्तल प्रति हैक्टेयर प्राप्त किया।

विकसित तकनीक में संशोधन/उन्नयनः मसूर फसल में रिजफरो तकनीकी का नवाचार

रिजफरो तकनीक को खरीफ की जगह रबी फसलों में प्रयोग करना। रिजफरों तकनीक, जो सामान्यतः खरीफ फसलों में उपयोग होती है, रबी फसल मसूर में उपयोग किया गया जिसके निम्न परिणाम प्राप्त हुएः

1. **जड़ो एवं पौधों की वृद्धि :** यह पाया कि मध्य जोन की काली भारी मिट्टी में एक सिंचाई के पश्चात् जड़ो में वृद्धि की दर कम हो रही है। अतः रिजफरों तकनीक से बुवाई की तथा पाया कि बीज मिट्टी के अंदर तो रहता हैं परन्तु खेत की सतह से ऊपर रहता है और जड़ो का विकास तेजी से होता है, जिससे पौधे में वृद्धि भी अधिक होती है।

2. **मावेट की अधिक वर्षा से सुरक्षा** : जनवरी माह में अधिकांश वर्षा होती है जिससे मसूर, चना जैसी फसलों में नुकसान होता है। परन्तु रिजफरो तकनीक के कारण फफूँद जनित रोगो का भी कम प्रभाव होता है।

बुवाई की पंक्तियों का समायोजन

रिजफरो तकनीक में पंक्तियों के मध्य का अंतर 12 इंच तक होता है। इस अंतर को 6–6 इंच की दो कतारों के बीच 13 इंच का अंतर रखा उससे निम्न लाभ प्राप्त हुआ।

1. 6–6 इंच के अंतर के कारण दोनो कतारों के पुष्पों में परागण अधिक होने से फूलों से फलियाँ बनने की संख्या में वृद्धि हुई तथा 13 इंच के अंतर देने से सूर्य की रोशनी एवं हवा का संचरण अधिक हुआ जिससे फली में अधिक भराव हुआ। 13 इंच के अंतर पर दवा छिड़काव एवं यंत्र चलित निराई में भी सहूलियत हुई। जिससे की लागत मूल्य में कमी हुई यह कार्य भी समय से संपादित हुए।
2. फसल कटाई के समय पाया कि कटाई के समय खेत में पकी फलियों के झड़ने में बहुत कमी हुई।

कृषि तकनीक का नवाचारी/योगदान/सफलता की कहानी के प्रचार का क्षेत्र, रंगीन छायाचित्रों सहित

कृषि तकनीक के प्रचार का क्षेत्र

राव गुलाब सिंह लोधी जी ने अपनी कृषि की नवीनतम तकनीक कृषि विज्ञान केन्द्र एवं कृषि विभाग के सहयोग से जिले एवं जिले के बाहर के अन्य किसानों तक मुख्यमंत्री खेत तीर्थ योजना के अंतर्गत अपने खेत में प्रदर्शन के माध्यम से जिले में प्रसार प्रचार किया।

1. कृषि विज्ञान केन्द्र, दमोह द्वारा आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम में उपस्थित किसानो को मसूर+सरसों की तकनीक बताई।
2. होशंगाबाद जिले के किसानों को उप संचालक कृषि के आदेश पर मसूर सरसों की अंतरवर्तीय खेती पर कृषकों को उचित मार्गदर्शन दिया।
3. बिरसा मुन्डा कृषि विश्वविद्यालय, रांची (झारखण्ड) मे तीन दिवसीय (24–26 अगस्त 2018) कार्यक्रम में किसानों एवं वैज्ञानिकों को तकनीक का मार्गदर्शन दिया।
4. जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर के आदेय 05–07 सितम्बर, 2018 में मसूर+सरसों की अंतरवर्षीय खेती की किसान एवं वैज्ञानिकों को जानकारी दी।
5. वर्ष 2019 में राजस्थान शासन द्वारा प्रकाशित पुस्तक में इस तकनीक का लेख प्रकाशित किया गया।
6. वर्ष 2017–18 में मध्यप्रदेश शासन द्वारा प्रकाशित पुस्तक में मसूर, सरसों की अंतरवर्षीय खेती तकनीक का समावेश किया गया।
7. भारतीय कृषि अनुसंधान केन्द्र, अटारी, जबलपुर द्वारा प्रकाशित तकनीकि लेख में मंसूर, सरसों अंतरवर्षीय खेती का लाभ प्रकाशित हुआ।
8. 18 अप्रैल 2018 को डी. डी. किसान चैनल उत्तर प्रदेश द्वारा प्रचार प्रसार हुआ।
9. मसूर एवं सरसों की सफलता की कहानी का डी. डी. किसान चैनल में दिल्ली 22 अक्टूबर 2018 को प्रसारण हुआ।
10. कार्यक्रम बाद संवाद डी. डी. किसान, दिल्ली में भाग लिया। 25.11.2017 को मसूर सरसों का कार्यक्रम हुआ।
11. आसपास के गांव के चौपालों में जाकर उनके द्वारा अपनाई गई तकनीक को लोगो ने बहुत सराहा एवं अपनाया भी।
12. पत्रिका, नई दुनिया जैसे स्थानीय समाचार पत्रों में उनके खेतों पर भ्रमण तकनीक के बारे में समाचारो में पढ़कर लोगों ने बहुत प्रभावित होकर उनके खेत में भ्रमण किया एवं तकनीकि को बारीकी से समझा।
13. छलहन अनुसंधान संस्थान कानपुर में विश्व दलहन सम्मेलन के अवसर पर देश के अन्य

चित्र 1. गेंहूँ एवं चने की खेती में राव गुलाब सिंह लोधी जी का उन्नत कार्य प्रदर्शन

राज्यों से आए हुए किसानों को मंच के माध्यम से उन्होने नवीन तकनीक की जानकारी दी।

14. 1 मार्च 2020 को भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली द्वारा आयोजित किसान मेला में देश के किसानों को नवीन तकनीक की पूर्ण जानकारी प्रदान की।
15. ज्वाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर ने नवाचार कृषि प्रौद्योगिकी क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्यों हेतु कृषक फैलो–2020 पुरस्कार से सम्मानित किया।
16. पूसा कृषि विज्ञान मेला 2022 (09 मार्च–11 मार्च 2022) के अवसर पर कृषि एवं संबद्ध गतिविधियों में उत्कृश्ट योगदान हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा अध्येता किसान से सम्मानित किया गया।

निष्कर्ष

राव गुलाब सिंह लोधी जी ने समन्वित कृषि प्रणाली के अंतर्गत कृषि के विभिन्न उद्यमों जैसे फसल उत्पादन, पशु पालन, बकरी पालन, मत्स्य पालन, कृषिवानिकी, दूध देने वाले जानवरों को पालना, आदि में अपने उन्नत कृषि प्रणाली से विभिन्न कृषि संस्थानो द्वारा सम्मान प्राप्त किया तथा अपनी आय में भी वृद्धि की। इसी प्रकार किसान भाई भी कृषि प्रणाली अपनाकर अपनी आय में वृद्धि प्राप्त कर सकते है जिससे वह अपनी रोजमर्रा की जरूरतों की पूर्ति कर सकते है। समन्वित कृषि प्रणाली अपनाकर किसान अपने खेतों में संग्रहित जल से फसल आच्छादन बढ़ा सकते है तथा उपलब्ध संसाधनों का भरपूर प्रयोग करते हुए अपनी आय में वृद्धि कर सकते है। छोटे एवं सीमांत किसान इस प्रणाली के द्वारा अपनी भूमि पर सालो भर रोजगार प्राप्त कर सकते है तथा बड़े किसान अपनी भूमि पर दूसरों को रोजगार मुहैया करा सकते है। अतः अच्छी आमदनी एवं रोजगार प्राप्त होने पर किसानों एवं मजदूरों का गाँवों से शहरों की तरफ होने वाले पलायन को रोका जा सकता है। साथ ही इस प्रणाली को अपनाकर हम मृदा–उत्पादकता को बरकरार रखते हुए अपने पर्यावरण को सुरक्षित रख सकते है।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करेः ई. मेलः *mbhatt95@gmail.com* एवं मो. न. *7409279383.*

हिमालयन नेटल

मनीषा गहलौत[1], बीनू सिंह[2] एवं पूजा भट्ट[3]

हिमालयन नेटल (*गिरार्डिनिया डाइवर्सीफोलिया*) को स्थानीय रूप से बिच्छू बूटी, नीलगिरी, कंडाली और डोलन के रूप में जाना जाता है। नेटल एक बारहमासी पौधा है जो संभवतः मजबूत, हल्के वजन और टिकाऊ प्राकृतिक रेशे का स्रोत है। यह भारत के पर्वतीय क्षेत्रों के जंगलों में उगता है जैसे जम्मू और कश्मीर, सिक्किम, अरूणांचल प्रदेश और उत्तराखण्ड।

उत्तराखण्ड राज्य में बिच्छू घास आम तौर पर पहाड़ी जंगलों में पाया जाता है। यह पहाड़ों पर 1200–1300 मीटर की ऊँचाई पर होता है। इस पौधे की लम्बाई 12–18 फीट होती है। बिच्छू घास का पौधा मिट्टी को जकड़ कर रखता है और उसे बहने से रोकता है। यह पौधा बिना खाद के उगाया जाता हैं और इसका तना नियमित रूप से काटा जाता है। यू.बी.एफ.डी.बी. और कुछ एन.जी. ओ. द्वारा किये गये प्रारंभिक सर्वेक्षणों के माध्यम से अनुमान लगाया गया है कि 770 वर्ग किलो मी. क्षेत्र में नेटल स्वाभाविक रूप से पाया जाता है, जो कि सालाना 24707.26 टन रेशा प्रदान कर सकता है।

बिच्छू घास की विशेषता

बिच्छू घास का रेशा कपड़ा उत्पादन के लिए सक्षम है। बिच्छू घास का रेशा लम्बा होता है और अन्य रेशों की तुलना में महीन, मजबूत और अधिक लचीला होता है। इससे बुना हुआ कपड़ा लिनन के समान होता है।

बिच्छू घास में एक विशेषता है जो इसे सर्दी और गर्मी दोनों के लिए एक आदर्श कपड़ा बनाती है। बिच्छू घास के रेशे अन्दर से खोखले होते हैं इस तरह वे अंदर हवा को रोक सकते है और प्राकृतिक रूप से तापमान का संतुलन बनाये रखते है। गर्मियों के वस्त्र बनाने के लिए बिच्छु घास का धागा प्रति देय अधिक धुमाव देकर बनाया जा सकता है व सर्दियों के वस्त्रों हेतु प्रति इन्च कम घुमाव देकर इन्सुंलेसन बनाया जा सकता है।

बिच्छू घास की छाल का संग्रह

बिच्छू घास को पहाड़ों के अलग–अलग गाँव से इकट्ठा किया जाता है। यह तीन–चार मीटर तक की ऊचाँई तक बढ़ता है। इस पौधे की छाल को इकट्ठा करने के लिए इसे जड़ से नहीं निकाला जाता है इसलिए इसे चार इंच ऊपर से काटा जाता है। जड़ मिट्टी मे रहने की वजह से पौधा दोबारा उग जाता है।

इसके बाद छालों को बंडलो में एकत्र किया जाता है और एक या दो हफ्ते के लिए पानी में सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है। इसके बाद ग्रामीण लोग डंठल से छाल छील लेते हैं और इसके आगे का प्रसंस्करण करते हैं।

बिच्छू घास के रेशों का प्रसंस्करण

बिच्छू घास की छाल को निकालने के बाद उसे सुखाया जाता है। गाँव के लोग बिच्छू घास के छाल की पिटाई और सफाई करते हैं। फिर रेशों को पानी में रसायन (हाइड्रोजन परऔक्साइड व सोडियम हाइड्रौआक्साइड) डालकर उसमें उबाला जाता है। गर्म पानी से निकालने के बाद उसे ठण्ड़े पानी से साफ किया जाता है और बिच्छू घास के रेशों को छाँव में सुखा दिया जाता है।

रेशों की कंघी करना

निकले हुए रेशों की सफाई के लिए कार्डिंग मशीन में डाला जाता है। यह रेशों को खोलता है और तन्तुओं को नरम बनाता है।

[1]प्राध्यापक; [2,3]एस.आर.एफ., वस्त्र एंव परिधान विभाग, गृह विज्ञान महाविद्यालय, गो.ब. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड

कताई

कताई द्वारा रेशों से धागे का निमार्ण किया जाता है कताई के लिए बागेश्वरी चरखे का उपयोग किया जाता है।

बुनाई

कताई के बाद धागे का निमार्ण किया जाता है। एक बार रेशों की कताई होने बाद, कपड़ों को हथकरघा पर बनाया जाता है। पहाड़ी महिलाऐं बुनाई में निपुण होती हैं। बुनाई के दौरान विभिन्न प्रकार के डिजाइन कपड़े पर बनाये जा सकते हैं। सरकारी पहल के साथ महिलाओं को विभिन्न प्रकार की बुनाई तकनीकों को बेहतर बनाने के लिए सिखाया जाता है।

बिच्छू घास के मौजूद अनुप्रयोग

अफ्रीका में बिच्छू घास का उपयोग सिलाई का धागा, सुतली और रस्सी बनाने में किया जाता है। केन्या में फाइबर और कागज उत्पादन के उद्देश्य से इसे उगाया जाता है। भारत और नेपाल में नेटल फाइबर परंपरागत रूप से तार, रस्सी और मछली पकड़ने के लिए कॉर्डेज, नेट, बैग, बोरे, जैकेट, के लिए कपड़े में बुना हुआ हैन्डबैग और मैट, शॉल और अन्य चीजों मे किया जाता है।

हिमालयन बिच्छू घास की पारंपरिक निष्कर्षण प्रक्रिया

बिच्छू घास का फाइबर अन्य सभी बास्ट फाइबर के समान है, जैसे कि भांग या केनाफ। फाइबर प्रसंस्करण के लिए औद्योगिक रूप से, उन्हीं प्रक्रियाओं का उपयोग किया जा सकता है जैसे भांग या सन के लिए किया जाता है। पौधे का ऊपरी हिस्सा फाइबर निकालने में समृद्ध होता है इसलिए इस हिस्से का उपयोग कपड़ा बनाने के लिए किया जाता है।

बिच्छू घास को रेशे के लिए अगस्त माह में काटा जाता है जब इसका पौधा लंबा होता है व बीज बनने लगता है और इसमें नई वृद्धि जड़ से आने लगती है। इस समय बिच्छू घास के पत्तों में कांटे होते हैं जो कि हाथों में चुभ जाते हैं इसलिए तने को पहले काटने की जरूरत होती है और कट जमीन के पास लगाते हैं। इस प्रक्रिया के दौरान दस्ताने पहनने की आवश्यकता होती है।

पत्तियों को डंठल से निकाल दिया जाता है। तने को एक दिन सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है, इससे तने लचीले हो जाते हैं और कुछ दिन बाद तना विभाजित होने में आसानी होती है। तने को तब तक निचोड़ा जाता है जब तक वह टूट न जाए। हाथ से पकड़ कर तने झुकाकर उसे तोड़ दिया जाता है। लकड़ी तोड़ने के बाद स्टेम को धीरे से अलग किया जाता है।

स्टेम के अंदर का हिस्सा जो फाइबर बनाता है, उसे पानी में उबाला जाता है। उबलने के बाद उन्हें पानी में धोया जाता है, धोने के बाद इसे मिट्टी में रगड़ दिया जाता है जिसे कमेदू मिट्टी कहा जाता है। इस मिट्टी के बिना कच्चा फाइबर कताई के लिए अलग नहीं होगा। फिर इसे धूप में सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। इसे धूप में सुखाने के बाद फाइबर को बुनाई के लिए तैयार किया जाता है। गाँव की महिलाएँ हाथ से कताई करती है। फाइबर को फिर एक पारंपरिक बैकस्ट्रैप लूम का उपयोग करके शॉल, स्कार्फ आदि में बुना जाता है।

निष्कर्ष

उत्तराखंड में हिमालयन नेटल फाइबर अच्छी मात्रा में पाया जाता है। उत्तराखण्ड के स्थानीय समुदाय बिच्छू घास की केवल पारंपरिक निष्कर्षण प्रक्रिया को जानते हैं इसलिए इस इको–फ्रेंडली फाइबर के विकास के दिशा में बहुत काम किए जाने की जरूरत है। उत्तराखंड में नेटल फाइबर की वर्तमान स्थिति के बारे में शोध किया जा सकता है और गुणवत्ता में कैसे सुधार किया जाए ताकि यह अन्य फाइबर की तरह नेटल को भी वास्तविक प्रतिस्पर्धा दे सके।

बिच्छू घास उत्तराखंण्ड की एक पारम्परिक शिल्प है, जो कि किसानों के लिए एक नए रोजगार के रूप में उभर रहा है। इसकी खेती अभी तक हिमालयी समुदाय में उतनी नहीं है लेकिन आने वाले वर्षो में एक लाभदायक उद्यम हो सकता है।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करेः ई. मेलः *beenuindolia8@gmail.com* एवं मो. न. *9079229675*.

क्या आपकी 'किसान भारती' पत्रिका की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है? यदि हाँ तो कृपया 150 रू. व्यवसाय प्रबन्धक, गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पन्तनगर–263145, जिला–ऊधमसिंहनगर के पते पर मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट से भेजकर अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करा लें ताकि आपको पत्रिका बराबर मिलती रहे।

पौष्टिकता से भरपूर उत्तराखण्ड के पहाड़ी व्यंजन

मनीषा[1] एवं रश्मि[2]

उत्तराखण्ड जैव विविधता से परिपूर्ण हिमालयी राज्य है। जहाँ उत्तराखण्ड की ऊँची चोटियों या पनढ़लों में सामान्यतः जलवायु ठण्डी रहती है, वहीं घाटियों में गर्मी भी पड़ती है। घाटी क्षेत्रों में सामान्यतः उन फसलों की खेती की जाती है, जिनकी खेती मैदानी क्षेत्रों में होती है। किन्तु ऊँचाई वाले क्षेत्रों में कुछ विशेष फसलों की खेती परम्परागत तरीके से की जाती है। ये परम्परागत फसले ऊँचाई वाले क्षेत्रों में न केवल विशम भौगोलिक परिस्थितियों में अच्छी पैदावार देती है,बल्कि पूरे पर्वतीय परिस्थितिकी को स्थायित्व भी प्रदान करती है।

उत्तराखण्ड की ये परम्परागत फसलें मुख्य रूप से खरीफ ऋतु में उगाई जाती है इन फसलों को मुख्य रूप से दो समूहों में रखा जा सकता है मोटे अनाज वाली फसलें एवं अल्प प्रयुक्त फसलें। मोटे अनाज वाली फसलों में मंडुवा (रागी/कोदो), झंगोरा(मादिरा, सांवा), कौंणी (कंगना), चीवा एवं अल्प प्रयुक्त फसलों में रामदाना, कुट्टू, बथुआ व नौरंगी (राईसबीन) प्रमुख है।

कृषि क्षेत्र में मुख्य रूप से उगाई जाने वाली फसलें उस क्षेत्र की जलवायु एवं भूमि पर निर्भर करती है। पर्वतीय क्षेत्रों के कृषक पूर्वजों ने शायद ऐसे ही फसलों को खेती के लिए चयन किया जो कि यहाँ के लिये बदलते जलवायु एवं विभिन्न प्रकार की भूमियों पर आसानी से उगायी जा सकती है। फसलों में अनाज की फसलों के साथ–साथ दलहनी फसलें जैसे लोबिया, भ्टट, गहत, नौरंगी, राजमा आदि की भी खेती की जाती है, जिससे कि ये फसले एक दूसरे को पोषण की पूर्ति करती है तथा उनके वृद्धि एवं विकास में सहायक होती है।

उत्तराखण्ड राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों में खरीफ में बोई जाने वाली फसलों में मंडुवा का स्थान क्षेत्रफल एवं उत्पादन के लिहाज से धान के बाद दूसरा है। अगर सभी परपंरागत फसलों को एक साथ देखा जाये तो राज्य में पर्वतीय क्षेत्रो में लगभग 70–75 प्रतिशत क्षेत्रफल पर इन्ही फसलों की खेती की जाती है। पर्वतीय क्षेत्रों में कम उर्वरा शक्ति वाली मृदा में उगाये जाने के कारण इन फसलों का महत्व और भी बढ़ जाता है।

पारंपरिक फसलों से बनने वाले भोज्य पदार्थ

उत्तराखण्ड के दो मंडल कुमाऊँ व गढ़वाल में इन पारम्परिक फसलों का महत्व उनके तीज त्यौहार व संस्कृति में देखा जा सकता है। विशेषकर पारंपरिक फसलों से वहाँ के लोग विभिन्न प्रकार के पकवान तैयार करते है जो किसी सुविशेष अवसर पर बनाये जाते हैं। जिनका स्वास्थ्य एवं पोषक दृष्टि से देखा जाये तो काफी विशेष महत्व है वे न केवल स्वादिष्ट होते हैं अपितु सेहत के लिये भी काफी लाभप्रद होते है जिनका प्रयोग हम अगर दिनचर्या में करें तो हमें रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता प्राप्त होगी एवं शरीर भी स्वस्थ रहेगा।

गढ़वाल के प्रमुख व्यंजनः इन्ही दो मण्डलों में से एक गढ़वाल मंडल की अपनी एक अनूठी मान्यताएं एवं परम्पराएं हैं जिसमें कई प्रकार के आयोजन त्यौहारों पर किये जाते हैं। इन्हीं त्यौहारों के आयोजन पर गढ़वाल मण्डल की पारंपरिक फसलों से बनने वाले व्यंजनों का विवरण इस प्रकार है।

(1) फाणाः यह गहत की दाल का बनने वाला तरल पदार्थ है इसे गढ़वाल में बड़े ही चाव से भात (चावल) के साथ खाया जाता है। इसको खाने से पथरी व भूख न लगने जैसी बीमारियों का निदान भी होता है। फाणा सर्दियों के मौसम में शरीर में गर्मी प्रदान करने का काम भी करता है जिससे की ठण्ड के मौसम में लगने वाले रोगों से शरीर को रोग प्रतिरोधक क्षमता मिल सके।

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ (गृह विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र, (भा.कृ.अनु.प.–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान) उत्तरकाशी (उत्तराखण्ड);
[2]विषय वस्तु विशेषज्ञ (गृह विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, पौढ़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

(2) पटूंगाः यह हरी सब्जियों को बेसन में मिलाकर पकोड़ी की तरह से बनाया जाता है जिसमें की स्थानीय मसालों का प्रयोग कर इसे अत्यधिक स्वादिष्ट बनाया जाता है। यह स्वास्थ्यवर्धक होता है और शरीर में रक्त की कमी को दूर करता है। पटूंगा को साधारणतया स्नैक्स के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

(3) बड़ीलः यह मसूर की दाल से बना हुआ ढोकले की तरह दिखने वाला व्यंजन हैए जो कि चटनी व धनिया के साथ परोसकर खाया जाता है। गुजराती भोज्य पदार्थ ढोकला की तरह दिखने वाले वाला बड़ील दलहनी होने के कारण प्रोटीन से भरपूर होती है। यह स्वादिष्ट होने के साथ–साथ सफर में ले जाने में भी आसान होती है, जिससे बाहर के खाने से भी बचा जा सकता है।

(4) मनजोलीः यह मट्ठे से बनने वाला पेय पदार्थ है। जिसका उपयोग चावल, रोटी के साथ किया जाता है, जो कि पेचिस व पीलिया वाले मरीजों के लिए बड़ा ही लाभप्रद होता है। पेचिस में यह शरीर में इलेक्ट्रोलाइट्स की कमी को पूरा करता है इन बीमारियों को ठीक करने हेतु मंजोली एक बहुत ही आसान एवं कारगर इलाज भी है।

(5) अरसेः यह गढ़वाल का विशेष पकवान है।जो कि शादी एवं शुभ समारोह में बनाया जाता है। अरसों को विशेशकर दुल्हन के साथ कलेऊ के रूप में उसके ससुराल भेजने की परम्परा है। अरसे बनाने हेतु कि चावल को भीगा कर पीसते हैंए और गुड की चाशनी से गूँथ कर एवं उनको आकार देकर तेल में तला जाता है, इसमें लौह तत्व की प्रचुर मात्रा होती है।यह लंबी दूरी की यात्रा के समय भी भोजन हेतु प्रयोग में जाए जा सकते हैं।

(6) भंजीर के लड्डुः यह पहाड़ी क्षेत्रों में सरसों के दाने के समान पाये जाने वाला एक जंगली दलहन फसल है जिसको यहाँ के लोग भून कर व इसके लड्डु बनाकर खाते है यह कि गर्भवती एवं धात्री महिलाओं के लिए बहुत ही हितकर होता है।

(7) पत्यूड़े : यह अरबी के पत्तो की बनायी जाती है इसको बेसन के साथ लपेटकर बनाया जाता है। यह पकोड़ी की तरह एक पौश्टिक व्यंजन है जिसमें भूरपर मात्रा में पोशक तत्व होते हैं।

(8) आटे का गिलोला एवं गुलगलेः यह आटे से बनने वाला मीठा व्यंजन है जो कि गढ़वाल में विशेषकर पर्व एवं समारोह में बनाया जाता है।

(9) कंडाली की सब्जी : इसको बड़े ही चाव से साथ खाया जाता है, इसकी सब्जी बहुँत ही पोष्टिक होती है इसमें भरपूर मात्रा में पोषक मात्रा में पोषक तत्व पाए जाते है इसकी सब्जी को पहले आग में भुना जाता है फिर उसको उबाला जाता है फिर इसकी सूखी एवं तरीदार सब्जी बनायी जाती है।

(10.) दूयूड़ाः यह मक्के एवं गेंहूँ के आटे को मिश्रित कर समोसे के आकार का बनाया जाता है जिसे भाप में पकाकर घी के साथ परोसा जाता है। यह प्रोटीन से भरपूर व्यंजन होता है।

कुमाऊँ मण्डल

कुमांऊँ के प्रमुख व्यंजनः गढ़वाल की तरह कुमाऊँ मण्डल मे भी कई पौष्टिक व्यंजन बनाये जाते है, जिनमें निम्नलिखित व्यंजन प्रमुख हैः

(1.) डूबकेः यह काले भट्ट की दाल से बना हुआ एक पौष्टिक तरल पदार्थ है जिसे चावल या भात के साथ बड़े ही चाव से कुमाऊँ में खूब खाया जाता है। इसमें कम मसालों का प्रयोग होता है जिसको चावल के आटे के मिलाकर बनाया जाता है। जिस कारण यह उदर के लिए अति लाभदायक होता है। इसको खाने से शरीर का पाचन तंत्र ठीक रहता है व भूख भी

खूब लगती है यह कब्ज जैस समस्याओं का निवारण करता है।

(2.) भट्ट का जौला: इसको भी डूबके की तरह से बनाया जाने वाला एक व्यंजन है लेकिन इसमें नमक पकाते वक्त नहीं मिलाया जाता है अपितु इसके लिए नमक का लहसून, जीरा, हरी मिर्च के साथ मिलाकर पिसा जाता है, और फिर इसेस चावल के साथ परोस कर खाया जाता है यह दस्त, मिचली जैसी बिमारियों को दूर करता है, यह एक बड़ा ही पौष्टिक व्यंजन है जिसको खाने से शरीर में ताकत रहती है।

(3.) बड़ी: यह भूजेला, मूली एवं पहाड़ी ककड़ी से बनने वाली एक सब्जी है जिसको उर्द की दाल के साथ नमक एवं अन्य मसालों से तैयार किया जाता है। फिर इसको धूप में खूब अच्छी प्रकार से सुखाकर संग्रहित किया जाता है और बाद में इसकी सब्जी बनाकर खायी जाती है। इसमें रेशे एवं अन्य पोषक तत्व होते है व यह अपच बदहजमी जैसी समस्या का निवारण भी करता है।

(4.) बड़े: यह उर्द की दाल से बनने वाला पकोड़ी की तरह दिखने वाला व्यंजन है जिसे मुख्यतः उत्सव, शादी एवं विशेष शुभ समारोह में बनाया जाता है,एवं गढ़वाल में इसको दाल की पकाड़ी बोला जाता है।

(5.) मुंगोडे: यह मूंग की दाल से बना एक स्वादिष्ट व्यंजन है। जिसे चटनी के साथ बड़े ही चाव से खाया जाता है।

(6.)ल्यूंडा: यह पहाड़ में पाए जाने वाली एक विशेष प्रकार की सब्जी है जो ना केवल स्वादिष्ट होती है अपितु पोषक तत्वों से भूरपूर होती है, इसमें विटामिन एं, आयरन, कैल्सियम एवं अन्य खनिज लवण भी पाए पाये जाते है।

(7.)कापा: यह हरी पत्तेदार सब्जियाँ जैसे पालक व लाई का बनाया जाता है जिसके चावल के आटे के साथ तरल भाग की तरह पकाया जाता है,यह भी काफी पोष्टिक होता है एवं गढ़वाल मण्डल में इसको काफली बोला जाता है।

(8.) गडेरी की सब्जी: यह एक बड़ी एवं मोटे आकार की अरबी की तरह दिखने वाली सब्जी है जिसको कुमाऊँ में बड़े ही चाव के साथ खाया जाता है, कुछ लोग इसमें भाँग डालकर भी खाते है इससे इसकी पोषक गंण्वत्ता और बढ़ जाती है।

(9.) भांग की चटनी: भाँग की चटनी यह भाँग के बीजों से सबनने वाली एक स्वास्थ्यप्रद चटनी है, जिसे विशेषकर जोड़ों में खाया जाता है क्योंकि यह शरीर को गर्मी प्रदान करती है।

(10.) घुघते:यह मकर संक्रान्ति पर्व के उपलक्ष्य में कुमाऊँ मंडल में मनाये जाने वाला एक लोकप्रिय व्यंजन है जिसे आटे व गुड़ के साथ मिलाकर बनाया जाता है, यह विशेषकर छोटे बच्चों में खास लोकप्रिय है, क्योंकि मकर संक्रान्ति के दिन बच्चे सुबह–सुबह घुघते की माला पहनकर छत पर खड़े होकर कौओं को बुलाते है।

अन्य व्यंजन

झंगोरे की खीर: यह झंगोरे के चावल से बनी हुई एक स्वादिष्ट मीठी एवं पौष्टिक खीर है।

लाल चावल की खीर/भात: उत्तराखंड में लाल रंग का चावल एक पारंपरिक फसल है, जिसको वहाँ के लोग चावल व खीर के रूप में प्रयोग कर खाते है।

लेसू: यह गढ़वाल एवं कुमाँऊ में बनने वाली एक पौष्टिक भरवाँ रोटी है जिसमें मंडुवे के आटे को गेहूँ की रोटी के अंदर से भरकर बनाया जाता है और मक्खन व घी के साथ खाया जाता है।

क्र.	व्यंजन	प्रोटीन (100 ग्राम प्रति दर से)	वसा (100 ग्राम प्रति दर से)	कार्बोहाईड्रेट (100 ग्राम प्रति दर से)	ऊर्जा (किलो कैलोरी)	कैल्शियम (मि.ग्रा.)	आयरन (100 ग्रा. प्रतिदर से)
1	फाणा	11	5.25	28.6	205.5	143.5	3.385
2	पतुंगा	15.20	4.20	41.80	265.33	86.00	4.29
3	बडील	22.3	8.7	57.3	353	73	2.7
4	मंनजोली	0.93	1.20	1.89	21.98	33.00	1.46
5	अरसे		अनुपात उपलब्ध नहीं है				
6	भंजीर के लड्डू		मान उपलब्ध नहीं है				
7	पत्यूडा	15.14	9.11	43.20	269.71	56.21	4.50
8	गिलोले	4.86	0.68	47.64	216	21.6	1.991
9	कंडाली की सब्जी						
10	द्यूणा	11.77	2.33	68.33	341.33	35.33	4.03
11	डुबके भटट के	15.81	4.00	38.65	253.55	48.39	2.52
12	भटट का जौला	14.40	6.50	6.97	144.00	80.00	3.47
13	बडी	18.47	1.08	45.91	267.26	118.72	2.94
14	बडे	16.80	10.98	41.72	332.90	107.80	2.66
15	मुगौडे	15.81	4.00	38.65	253.55	48.39	2.52
16	लिंगूडा		मान उपलब्ध नहीं है				
17ए.	कापा पालक	1	0.35	1.45	13	36.5	0.57
17	कापा लाई	2.55	0.2	2.95	24	185	6.25
18	गडेरी की सब्जी	2.86	4.86	20.10	135.24	38.10	0.40
19	भाग की चटनी		मान उपलब्ध नहीं है				
20	घुघते	6.83	11.12	76.53	343	219.55	4.12

मंडुव की रोटीः यह मंडुवे के आटे में थोड़ा सा गेंहूँ के आटे को मिलाकर बनाये जाने वाली रोटी है, जो न केवल स्वाद में भरपूर अपितु स्वास्थ्य की दृष्टि से काफी स्वास्थ्यवर्धक है। इसमें रेशा लौह तत्व कैल्शियम होने के साथ इसकी गुणवत्ता अधिक बढ़ जाती है एवं यह मधुमेह के रोगियों के लिय काफी लाभप्रद है इसका सेवन शरीर के लिये काफी लाभदायक है।

गहत/कुलथ की दालः यह कुमाँऊ व गढ़वाल मंडल की प्रमुख दालों में से एक है जिसमें गन्धेणी ,ह्वींग व जीरे के तड़के के साथ बनाया जाता है यह पथरी के मरीजों के लिए सेवन करना लाभप्रद है। यह किडनी के लिये भी लाभदायक है।

आलू के गुटखेः यह व्यंजन उबले पहाड़ी आलुओं से मसाला डालकर बनाया हुआ एक चटपटा व्यंजन है जिसे पहाड़ों में लोग अधिकतर अक्सर सड़क के किनारे दुकानों पर स्नैक्स के तौर पर खाना पसंद करते है। आने–जाने वाले यात्री एवं पर्यटक भी इसे बहुत ज्यादा पसंद करते है।

क्षेत्रीय स्तर पर खाद्य सुरक्षा कुपोषण से सुरक्षा एवं विभिन्न त्योहारों एवं संस्कृति से जुड़े होने के कारण इन फसलों का महत्व अन्य फसलों की तुलना में कही ज्यादा है। बदलते पर्यावरण परिस्थितिकी को

दृष्टिगत रखते हुए इन फसलों को भविष्य हेतु संरक्षित करना एवं व्यापक प्रचार प्रसार के साथ–साथ शासन से अधिक प्रोत्साहन की आवश्यकता है व फसले हमारी अमूल्य धरोहर के अंग है। जिनको हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिये सरंक्षित रखना हमारा कर्तव्य है।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करेः ई. मेलः *paran.arya@gmail.com* एवं मो. न. *7500823417.*

लेखकों से निवेदन

प्रायः देखा गया है कि मासिक पत्रिका 'किसान भारती' में प्रकाशनार्थ लेख भेजते समय लेखक, बन्धु लेख भेजने के दिशा–निर्देशों का पालन नहीं करते जिसके कारण लेख के प्रकाशन में अनावश्यक विलम्ब होने के साथ–साथ हमें कई कठिनाइयों का सामना करता पड़ता है। अतः लेखक बन्धुओं से अनुरोध है कि भविष्य में लेख भेजते समय निम्नलिखित बातों को सुनिश्चित करते हुए लेख भेजने का कष्ट करें ताकि लेख के प्रकाशन में अनावश्यक विलम्ब न होः

1. प्रयास करें की आपका लेख संक्षिप्त हो तथा किसानों को ठीक से पढ़ने एवं समझने हेतु आम बोल–चाल की भाषा में हो।
2. लेख कम्पयूटर के पेज मेकर, कोरल अथवा एम.एस.वर्ड प्रोग्राम में देवनागिरी, कुर्तीदेव के हिन्दी फान्ट में टंकित हो।
3. लेख के प्रारम्भ में लगभग 70–100 शब्दों को लेख का सांराश बोल्ड लेटर में टंकित हो।
4. कम्पयूटर टंकित लेख 2 प्रतियों में सी0डी0 सहित भेजें अथवा इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध है तो आप लेख की साफ्ट कापी को *kisanbhartipatrika@gmail.com* पर भेज सकते हैं।
5. चूंकि हमारी इस पत्रिका में कृषक समाज की समस्याओं एवं आवश्यकताओं के अनुरूप ही लेख प्रकाशित किये जाते हैं, अतः लेख भेजने से पहले सुनिश्चित कर लें कि आपके द्वारा भेजा जा रहा लेख प्रत्यक्ष रूप से कृषकों की समस्याओं एवं आवश्यकताओं के अनुरूप है।
6. फसल विशेष संबंधी लेख भेजते समय यह सुनिश्चित करें कि आपके द्वारा यह लेख उक्त फसल विशेष की बुवाई माह से 3 माह पूर्व भेजा जा रहा है अन्यथा विलम्ब से प्राप्त लेखों का समय से प्रकाशन संभव न हो सकेगा।
7. कभी–कभी देखने में आता है कि बहुत संक्षिप्त लेख (लगभग 1 पेज) में लेखकों की संख्या 4–5 तक होती है। इस प्रकार के लेख को प्रकाशित करने या न करने का निर्णय संपादक मंडल के पास सुरक्षित है। कृपया लेख में लेखकों की संख्या को 1–3 तक ही सीमित रखें।
8. लेख प्रेषित करते समय लेखक बन्धु कृपया यह सुनिश्चित कर लें कि उन्होंने यह पते में अपने पद, विभाग / संस्था से संबन्धता का उल्लेख कर दिया है एवं उनके द्वारा दिया जा रहा पता पूर्ण है। यह विवरण आपके लेख के प्रकाशनोपरान्त लेखक की प्रति को प्रेषित करने के लिए आवश्यक है।
9. लेख प्रेषित करते समय लेखक अपना *Email id, Contact No., All author designation* के साथ प्रेषित करें।

पाठकों से निवेदन

पाठक बन्धुओं! हमें आपका सतत् सहयोग प्राप्त हो रहा है जिसके लिए हम आपके आभारी हैं, जैसा कि आपको विदित ही है कि इस पत्रिका में अधिकतर लेख वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित होते हैं जिस कारण आपकी सहभागिता नहीं हो पाती। सम्भव है कि आपके पास भी कोई ऐसी जानकारी, अनुभव अथवा तकनीक हो जिसे आप अन्य पाठकों के साथ बांटना चाहते हों। अगर ऐसा हो तो संकोच न करें और हमें अपनी जानकारी / अनुभव / तकनीक टंकित कराकर सम्पादक, किसान भारती, संचार केन्द्र गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर–263145, ऊद्यमसिंहनगर, उत्तराखण्ड के पते पर भिजवाने का कष्ट करें। यदि आपके द्वारा दी गयी जानकारी अथवा अनुभव किसानोपयोगी पाया गया तो हम उसे पत्रिका के आगामी अंको में प्रकाशित करने का प्रयास करेंगे।

सम्पादक

सेहत, संतुलन और संरक्षणए फसल एक फायदे अनेक : मशरुम उत्पादन

ओमकार सिंह[1], अभिषेक सिंह[2], विष्णु डी. राजपूत[3] एवं अवनी कुमार सिंह[4]

मशरूम प्राचीन काल से ही अपनी स्वादिष्टता एवं पौष्टिकता के कारण उपयुक्त आहार के रूप में उपयोग लाया जाता रहा है। यह उच्च गुणवत्ता प्रोटीन, विटामिन, खनिज लवण तथा खाद्य रेशों का एक अच्छा स्रोत है। यूनानियों ने इसे रणभूमि में योद्धाओं में मजबूती प्रदान करने वाला, रोमवासियों ने भगवान का भोजन तथा चीनियों ने इसे आयु बढ़ाने वाले रसायन की संज्ञा दी है। मशरूम में कई प्रकार के विटामिन्स जैसे ए,बी,सी,डी एवं के पाये जाते है। इसके अतिरिक्त कार्बोहाइड्रेट प्रोटीन, कैल्सियम फास्फोरस, लोहा, ताँबा तथा पौटेशियम खनिज लवण पाये जाते है। इस प्रकार मशरूम अत्यधिक पौष्टिक आहार है तथा कई रोगों जैसे हदय रोग, बेरी–बेरी, चर्मरोग, रक्त की कमी, बच्चों का सूखा रोग तथा मधुमेह के रोगियों के लिये इसका सेवन एक आदर्श औषधी है।

शाकाहारी व्यक्तियों के लिए मशरूम एक संतुलित आहार है। सब्जियों में न पाये जाने वाला तथा बहुमूल्य फोलिक एसिड एवं विटामि बी.12 भी मशरूम में होता है। स्टॉर्च की कमी और उच्च मात्रा में कार्बोहाइड्रेटस होने के कारण मशरूम मधुमेह (डायविटीज) के रोगियों के लिए उत्तम भोजन है। मशरूम सदियों से निरंतर उगाया जाता रहा है। प्राचीन काल में, यूनानियों ने सोचा था कि मशरूम युद्ध में योद्धाओं के लिए ताकत प्रदान करते हैं। रोमनों ने मशरूम को ''भगवान का भोजन'' कहा, सदियों से चीन में लोग मशरूम का उपयोग दवा और भोजन के रूप में करते रहे हैं, प्राचीन काल से ही मशरूम मानव उपभोग के लिए एक उपयोगी उत्पाद रहा है। लेकिन आज के परिदृश्य में मशरूम को भोजन के अलावा अन्य मानवीय समस्याओं के समाधान के रूप में देखा जा रहा है।

मानवीय समस्याओं के बीच, तीन मुख्य समस्याएं खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण प्रदूषण हैं। मशरूम खाद्य समस्याओं के साथ–साथ भोजन की कमी को दूर करना और विभिन्न प्रकार के पर्यावरण प्रदूषण को भी कम कर सकता है। मशरूम के इन सभी गुणों के कारण, यह दुनिया भर में विभिन्न तकनीकी और वैज्ञानिक संस्थानों द्वारा गहन अध्ययन करके इसे और भी उपयोगी बनाने की कोशिश लगातार हो रही है। मशरूम एक कवक है जिसमें ऊतक संरचना नहीं होती है तथा यह एककोशिकीय या बहुकोशिकीय जीव हो सकते है। यद्यपि मशरूम एक प्रकार का कवक है, उनमें सेल्यूलोज और क्लोरोफिल नहीं होते हैं, इसलिए वे अपना पोषक तत्व नहीं बना सकते हैं, उन्हें पोषण को अवशोषित करने के लिए दूसरे पौधे या जानवर पर आश्रित रहना होता है। मशरूम लघु वनोपज के महत्वपूर्ण घटक हैं, जो इस जीवमंडल के सबसे प्रचुर जैव–अणुओं पर उगते हैं, जो कि सेल्यूलोज है। वर्तमान में मशरूम को एक विशिष्ट फलने वाले शरीर के साथ एक मैक्रो–कवक के रूप में माना जाता है जो या तो एपिगियस या हाइपोगियस हो सकता है और नग्न आंखों से देखा जा सकता है और हाथ से उठाया जा सकता है। मशरूम का उपयोग आज दुनिया भर में उनके अनूठे स्वाद के लिए किया जा रहा है, आज प्रकृति में 2000 से अधिक मशरूम की प्रजातियां मौजूद हैं, लेकिन इनमें से केवल 25 प्रजातियों का उपयोग भोजन के रूप में और व्यावसायिक खेती में किया जा सकता है। मशरूम को उच्च पोषण और कार्यात्मक मूल्य के साथ एक विनम्रता युक्त भोजन के रूप में माना जाता है, साथ हे साथ उन्हें न्यूट्रास्युटिकल भोजन के रूप में भी स्वीकार किया जाता हैय वे अपनी ऑर्गेनोलेप्टिक योग्यता, औषधीय गुणों और आर्थिक महत्व के कारण

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ (पौधे संरक्षण), कृषि विज्ञान केंद्र, पी.जी. कॉलेज, गाजीपुर, यू.पी; [2]शोधार्थी, कृषि जैव प्रौद्योगिकी विभाग, कृषि महाविद्यालय, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ, यूपी; [3]सह प्राध्यापक, अकादमी ऑफ बायोलॉजी एंड बायोटेक्नोलॉजी, सदर्नफेडरल यूनिवर्सिटी, रोस्तोव–ऑन–डॉन, रूस; [4]प्रधान वैज्ञानिक, सब्जी विज्ञान प्रभागआईसीएआर– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,पूसा कैंपस, नई दिल्ली, भारत

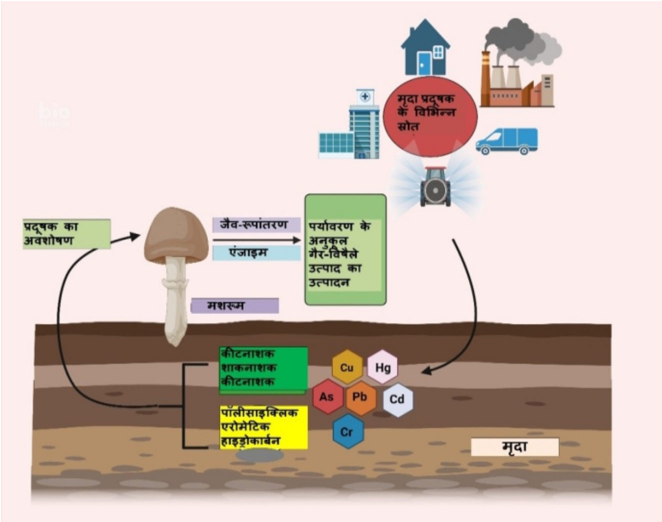

चित्र–1: मशरूम आधारित माइकोरिमेडिशन का आरेखीय निरूपण

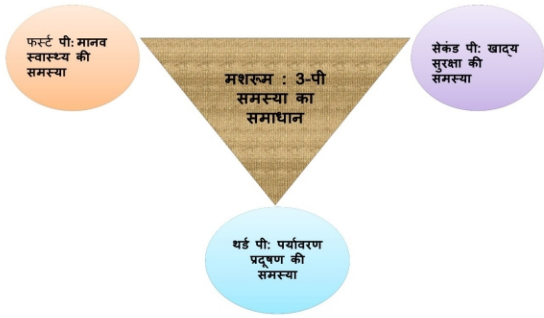

चित्र–2: मशरूम आधारित 3–पी समस्या से सम्बंधित समाधान का आरेखीय निरूपण

और महत्वपूर्ण हो जाते हैं, हालांकि खाद्य मशरूम और औषधीय मशरूम के बीच अंतर करने का कोई तरीका नहीं है क्योंकि कई आम और खाद्य प्रजातियों में चिकित्सीय गुण होते हैं और चिकित्सा प्रयोजनों के लिए उपयोग किए जाने वाले कई खाद्य भी होते हैं। दुनिया भर में सबसे अधिक खेती की जाने वाली मशरूम एगारिकस बाईस्पोरस है जिसके बाद *लेंटिनसएडोड्स, प्लुरोटस* की प्रजाति और *फ्लेमुलिनावेलुटिप्स* हैं। मशरूम का उत्पादन लगातार बढ़ता जा रहा है, चीन दुनिया में सबसे बड़ा उत्पादक है। हालाँकि जंगली मशरूम अपने पोषण, संवेदी और विशेष रूप से औषधीय विशेषताओं के लिए अधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है। मशरूम में रोगाणुरोधी गुण होते हैं, जो द्वितीयक चयापचयों (सेकेंडरीमेटाबोलाइट) का एक स्रोत भी होता है, जैसे कि सेस्क्यूटरपेन्स और अन्य टेरपेन, स्टेरॉयड, एन्थ्राक्विनोन, बेंजोइकएसिडडेरिवेटिव और क्विनोलिन, होते है परन्तु इनमे ऑक्सालिक एसिड, पेप्टाइड और प्रोटीन जैसे प्राथमिक मेटाबोलाइट्स भी होते हैं। सभी मशरूमों में, लेंटिनसएडोड सबसे अधिक अध्ययन की जाने वाली प्रजाति है और ऐसा लगता है कि ग्राम–पॉजिटिव और ग्राम–नेगेटिव बैक्टीरिया दोनों के खिलाफ एक व्यापक रोगाणुरोधी क्रिया ये करते है। स्यूडोप्लेक्टेनियानाइग्रेल से प्राप्त पेलेक्टासिनपेप्टाइड, ग्राम–पॉजिटिवबैक्टीरिया के खिलाफ उच्चतम रोगाणुरोधी गतिविधि के साथ पृथक यौगिक है, जबकि 2–एमिनोक्विनोलिन, ल्यूकोपैक्सिल सएल्बिसिमस से पृथक, ग्राम–नकारात्मक बैक्टीरिया के खिलाफ उच्चतम रोगाणुरोधी गतिविधि पेश करता है। मिट्टी और जल प्रदूषण की समस्या से निपटने के लिए माइकोरिमेडिशन एक कम लागत कि प्रभावी और टिकाऊ रणनीति साबित हो सकती है। कवक विभिन्न हानिकारक प्रदूषकों के उपचार के लिए आदर्श संसाधन हो सकता है क्योंकि इसकी वृद्धि, विशाल हाइपल नेटवर्क, बहुमुखी बाह्य लिग्निनोलिटिकेनजाइम का उत्पादन, उच्च सतह क्षेत्र से मात्रा अनुपात, भारी धातुओं के प्रतिरोध, उतार–चढ़ाव वाले पीएच, तापमान और धातु की उपस्थिति के लिए अनुकूलन क्षमता–बाध्यकारी प्रोटीन, उनका उपयोग विभिन्न प्रदूषकों के इन–सीटू उपचार के लिए भी किया जा सकता है जो विभिन्न उद्योगों जैसे कि रंजक, शाकनाशी और दवा दवाओं द्वारा जारी किए जाते हैं। इनका उपयोग बायोरिएक्टर में भी किया जा सकता है। बायोरिएक्टरसिस्टम नियंत्रित शारीरिक स्थितियों के

साथ माइक्रोबियल विकास को बढ़ावा दे सकते हैं। नियंत्रित कवक बायोमास के साथ प्रदूषकों के क्षरण में तेजी लाने के लिए और बायोरिएक्टर में मेटाबोलाइट्स सम्बंधित उपकरण लगे होते हैं। बायोरिएक्टर विभिन्न उद्योगों और दवा उद्योगों से अपशिष्ट के उपचार के लिए उपयोग में लाये जा सकते हैं। इन बायोरिएक्टर स्कैन का उपयोग पॉलीसाइक्लिक रोमैटिक हाइड्रोकार्बन, जड़ी–बूटियों, कीटनाशकों, टार, क्लोरीन युक्त सॉल्वैंट्स और विस्फोटक जैसे विभिन्न हानिकारक रसायनों को मिट्टी में से हटाने के लिए उपयोग में लाया जाता सकता है (चित्र–1)। मिट्टी और जल प्रदूषण की समस्या से निपटने के लिए माइकोरिमेडिशन एक कम लागत कि प्रभावी और टिकाऊ रणनीति साबित हो सकती है।

कवक विभिन्न हानिकारक प्रदूषकों के उपचार के लिए आदर्श संसाधन हो सकता है क्योंकि इसकी वृद्धि, विशाल हाइपल नेटवर्क, बहुमुखी बाह्य लिग्निनोलिटिकेनजाइम का उत्पादन, उच्च सतह क्षेत्र से मात्रा अनुपात, भारी धातुओं के प्रतिरोध, उतार–चढ़ाव वाले पीएच, तापमान और धातु की उपस्थिति के लिए अनुकूलन क्षमता– बाध्यकारी प्रोटीन, उनका उपयोग विभिन्न प्रदूषकों के इन–सीटू उपचार के लिए भी किया जा सकता है जो विभिन्न उद्योगों जैसे कि रंजक, शाकनाशी और दवा दवाओं द्वारा जारी किए जाते हैं। इनका उपयोग बायोरिएक्टर में भी किया जा सकता है। बायोरिएक्टरसिस्टम नियंत्रित शारीरिक स्थितियों के साथ माइक्रोबियल विकास को बढ़ावा दे सकते हैं। नियंत्रित कवक बायोमास के साथ प्रदूषकों के क्षरण में तेजी लाने के लिए और बायोरिएक्टर में मेटाबोलाइट्स सम्बंधित उपकरण लगे होते हैं। बायोरिएक्टर विभिन्न उद्योगों और दवा उद्योगों से अपशिष्ट के उपचार के लिए उपयोग में लाये जा सकते हैं। इन बायोरिएक्टर स्कैन का उपयोग पॉलीसाइक्लिक रोमैटिक हाइड्रोकार्बन, जड़ी–बूटियों, कीटनाशकों, टार, क्लोरीन युक्त सॉल्वैंट्स और विस्फोटक जैसे विभिन्न हानिकारक रसायनों को मिट्टी में से हटाने के लिए उपयोग में लाया जाता सकता है। मशरूम को माइकोरिमेडिशनटूल के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि इनका उपयोग विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों के उपचार में किया जाता है। माइकोरिमेडिशनटूल मशरूम और उनके एंजाइमों को संदर्भित करता है जो विभिन्न पर्यावरणीय प्रदूषकों को नीचा करने, औद्योगिक और कृषि–औद्योगिक कचरे को उत्पादों में बदलने की क्षमता रखते हैं। माइकोरिमेडिशन विभिन्न प्रकार के सब्सट्रेट और प्रदूषकों के क्षरण के लिए मशरूम द्वारा उत्पादित कुशल एंजाइमों पर निर्भर करता है।

मशरूम को इन सभी उन्हें 3–पी, इन सभी गुणों के कारण मशरूम को 3–पी, थ्योरी के अंतर्गत रखते हैं, फर्स्ट पी, मानव स्वास्थ्य की समस्या, सेकंड पी, खाद्य सुरक्षा की समस्या और थर्ड पी, पर्यावरण प्रदूषण की समस्या से सम्बंधित (चित्र–2) है। माइकोरिमेडिशन प्रक्रिया के लिए मशरूम का उपयोग करना एक जबरदस्त वरदान साबित हो सकता है। इस प्रकार कृषि और औद्योगिक कचरे पर खाद्य मशरूम की खेती एक मूल्य वर्धित प्रक्रिया हो सकती है जो इन निर्वहनों को खाद्य पदार्थों और फीड में परिवर्तित करने में सक्षम है। पौष्टिक मशरूम के उत्पादन के अलावा, यह मशरूम कि प्रजातियों की जीनोटॉक्सिसिटी और विषाक्तता को कम करता है। मशरूम की खेती के माध्यम से दुनिया की तीन प्रमुख ''3P समस्याओं'' यानी मानव स्वास्थ्य की समस्या, खाद्य सुरक्षा की समस्या और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को कम कर सकते हैं। इस प्रकार, जैव उपचार उपकरण के रूप में मशरूम की क्षमता के दोहन और उत्पाद के रूप में खपत के लिए इसके सुरक्षा पहलुओं की दिशा में और अधिक शोध की आवश्यकता है।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करेः ई. मेलः *omkar.singh@gmail.com* एवं मो. न. *7252956650.*

ब्रूसेलोसिस - एक जूनोटिक रोग

मानसी[1], अजय कुमार उपाध्याय[2], अजय कुमार[3] एवं नवल किशोर सिंह[4]

ब्रूसेलोसिस मुख्यतः जानवरों में होने वाली संक्रामक बीमारी है, जिससे गोपशुओं तथा भैंसों में गर्भावस्था के अंतिम त्रैमास में गर्भपात हो जाता है। इस रोग की मृत्युदर कम है, किंतु रोग शीघ्र दूर नहीं होता। इस बीमारी से किसानो को आर्थिक हानि होती है क्योंकि ग्रसित पशु का दुग्ध उत्पादन प्रभावित होता है। मनुष्यों में संक्रामण के बचाव हेतु दूध को ठीक से उबाल कर पीना चाहिए। पशुओं का टीकाकरण ही एकमात्र टीकाऊ उपाय है जो मादा पशुओं में छः माह की उम्र में लगाया जाता है। इंसानों के लिए ब्रूसेलोसिस का टीका उपलब्ध नहीं है।

ब्रूसेलोसिस एक संक्रामक बीमारी है जो मुख्यतः मवेशियों, शूकर, बकरी भेड़ और कुत्तों में होती है। यह जूनोटिक रोग है अर्थात यह जानवरों से मनुष्यों में फैलता है। मनुष्यों में ब्रूसेलोसिस को अन्य नामों से भी जाना जाता है जिसमें ''लहरदार बुखार'' व ''माल्टा ज्वर'' प्रमुख हैं। भारत में ब्रूसेलोसिस एक स्थानिक बीमारी है जिससे डेयरी उद्योग को भारी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

कारण

ब्रूसेलोसिस बैक्टीरिया ब्रूसेला की विभिन्न प्रजातियों जैसे कि ब्रूसेला अबोर्टस, ब्रूसेला मेलिटेंसिस, ब्रूसेला सुइस, ब्रूसेला केनिस के कारण होता है। मनुष्यों में मुख्यतया ब्रूसेला मेलिटेंसिस तीव्र संक्रमण का कारक है जो भेड़ और बकरियों में सर्वाधिक पाया जाता है। ये संक्रमित जानवरों के मूत्र, दूध एवं गर्भनालीय तरल पदर्थों में अधिक संख्या में निकलते है। ये जीवाणु धूल, गोबर, पानी, गाढ़े घोल, गर्भपात भ्रूण, मिट्टी, मांस और डेयरी उत्पादों में लंबी अवधि तक जीवित रह सकते हैं।

पशुओं में संक्रमण

पशुओं में संक्रमण निम्न माध्यम से फ़ैल सकता है:

- स्वस्थ पशु को संक्रमित पशु के साथ रखने से
- स्वस्थ और संक्रमित पशुओं के आपसी प्रजनन क्रिया से
- स्वस्थ पशु को संक्रमित चारा खिलाने से
- स्वस्थ पशु को संक्रमित पशु का दूध पिलाने से
- कृत्रिम गर्भाधान में संक्रमित पशु का वीर्य इस्तेमाल करने से

मनुष्य में संक्रमण

मनुष्यों में ब्रूसेलोसिस एक उपेक्षित बिमारी है जो समान्तयः नज़रअंदाज़ हो जाती है। ब्रूसेलोसिस प्रायः उन लोगों को होता है, जो कि पशुधन के क्षेत्र में कार्य करते है। यह सभी आयु वर्ग के समूहों तथा स्त्री एवं पुरुष दोनों लिंगों को प्रभावित करता है। मनुष्य में संक्रमण तीन अलग–अलग माध्यम से फैलता है। पहला, पशुओं की संक्रमित सामग्री जैसे कि जन्म के समय निकलने वाले पदार्थो, रक्त, उघड़ी त्वचा, मूत्र, बलगम झिल्ली या नेत्रश्लेष्मला के साथ सीधे संपर्क से होता है। दूसरा, संक्रमित पशु के कच्चे दूध अथवा उससे निर्मित पशु उत्पादों के सेवन से अप्रत्यक्ष रुप में होता है। मनुष्यों में यह संक्रमण का प्रमुख स्रोत है। संक्रमित पशुओं के कच्चे व अधपके मॉस खाने वालों को भी यह बीमारी हो सकती है। इनके अलावा हवा में उपस्थित जीवाणुओं से भी फैलता है। श्वास के माध्यम से वायुजनित घटक शरीर में प्रवेश कर मनुष्यों को संक्रमित कर सकते हैं। ब्रूसेलोसिस का संक्रमण व्यक्ति–से–व्यक्ति में न के बराबर है।

पशुओं में लक्षण

इस रोग में गोपशुओं तथा भैंसों में गर्भवस्था के अन्तिम त्रैमास में गर्भपात हो जाता है। पशुओं में गर्भपात से पहले योनि से अपारदर्शी पदार्थ निकलता

[1]सहायक प्रध्यापक; [2]विभागाध्यक्ष; [3]प्रोजेक्ट फेलो एवं [4]पीएच.डी. छात्र, पशु जन स्वास्थ्य एवं जानपदिक विभाग, पशुचिकित्सा एवं पशुपालन विज्ञान महाविद्यालय, पन्तनगर, उत्तराखण्ड

है तथा गर्भपात के बाद पशु की जेर रुक जाती है। पशु के कमजोर बच्चे का जन्म, बाँझपन व उत्पादकता में कमी जैसी समस्या भी हो सकती है। इसके अतिरिक्त यह जोड़ों में आर्थ्रायटिस (जोड़ों की सूजन) पैदा कर सकता है।

मनुष्यों में लक्षण

मनुष्यों में यह उतार–चढ़ाव वाला बुखार नामक बीमारी पैदा करता है। यह रोग द्वारा मृत्यु की संख्या अधिक नहीं है, किंतु रोग शीघ्र दूर नहीं होता। उद्‌भवन काल 5 से 21 दिन है। कभी कभी रोग के लक्षण प्रत्यक्ष होने में 6 से 9 माह तक लग जाते है। इसके लक्षणों में सिरदर्द, मांसपेशियों में दर्द, बुखार और थकान शामिल हैं। उग्र रूप में ज्वर, ठंड़ के साथ कँपकँपी तथा पसीना होता है। जीर्ण रूप में लक्षण धीरे–धीरे प्रकट होते हैं।

कुछ संकेत और लक्षण लंबे समय तक रह सकते हैं, जैसे कि–आवर्तक बुखार, गठिया, अंडकोष और अंडकोष के क्षेत्र की सूजन, ह्रदय की सूजन, क्रोनिक थकान, अवसाद, यकृत और तिल्ली की सूजन। जटिलताएं शरीर की किसी भी अंग प्रणाली को प्रभावित कर सकती हैं।

निदान

- एक विशेष परीक्षण रणनीति का चुनाव किसी देश या क्षेत्र में अतिसंवेदनशील जानवरों (पशुधन और वन्यजीव) में ब्रूसेलोसिस की मौजूदा महामारी विज्ञान की स्थिति पर निर्भर करता है।
- निदान के लिए प्रयोगशाला परीक्षणों के सहयोग की आवश्यकता होती है।
- डायग्नोस्टिक विधियों में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष परीक्षण शामिल हैं। प्रत्यक्ष परीक्षण माइक्रोबायोलोजिकल विश्लेषण एवं पौलिमरेज चेन रिएक्शन (पीसीआर) विधि पर आधारित हैं। अप्रत्यक्ष परीक्षण 'इन विवो' या 'इन विट्रो ' टेस्टिंग पर आधारित होते है।
- संभावित नैदानिक परीक्षण दो तरह का होता है। पहला– रोज बंगाल प्लेट टेस्ट (आर. बी. पी. टी.) और दूसरा– स्टैंडर्ड एग्लूटीनेशन टेस्ट (एस.ए. टी)।
- स्क्रीनिंग के लिए रोज बंगाल प्लेट टेस्ट (आर. बी. पी. टी.) है। यदि संभावित नैदानिक परीक्षण सकारात्मक है, तो नैदानिक पुष्टि परीक्षण के तहत दो परीक्षणों में से एक रोग की पुष्टि के लिए किया जाता है।
- नैदानिक पुष्टि परीक्षण के तहत जीवाणु का अलगाव एवं पी.सी.आर. मुख्य हैं। एलिसा, आई. जी.जी. परीक्षण और कूम्ब आई.जी.जी भी शामिल हैं।
- इन के अलावा अन्य विधियां जैसे मल्टीपल लोकस वेरिएबल (टेंडेम रिपीट की संख्या) विश्लेषण (एम.एल.वी.ए) एवं मल्टी–लोकस सीक्वेंस एनालिसिस (एम.एल.एस.ए) भी प्रचलन में हैं। इन विधियों को व्यापक स्वीकृति मिल रही है और आने वाले वर्षों में लगभग निश्चित रूप से महामारी विज्ञान उद्देश्यों के लिए नियमित टाइपिंग और फिंगरप्रिंटिंग विधियों के रूप में उपयोग किया जाएगा।

उपचार और रोकथाम

अब तक इस रोग का कोई प्रभावकारी इलाज नहीं हैं। इसकी रोकथाम के लिए बछियों में 3–6 माह की आयु में ब्रूसेला–अबोर्टस स्ट्रेन–19 के टीके लगाए जा सकते हैं। पशुओं में प्रजनन की कृत्रिम गर्भाधान पद्धति अपनाकर भी इस रोग से बचा जा सकता है। मनुष्य को ब्रूसेलोसिस से बचाने का सबसे अच्छा तरीका जानवरों में संक्रमण को होने से रोकना है।

- उच्च जोखिम की दर वाले एनजूनोटिक क्षेत्रों (पशुओं की आबादी में रोग की लगातार उपस्थिति) में बोवाइन ब्रूसेलोसिस के नियंत्रण के लिए पशुओं में टीकाकरण आवश्यक है।
- कम प्रभावित क्षेत्रों में ब्रूसेलोसिस को समाप्त करने का एक उपाय परीक्षण और संक्रमित पशुओं को अलग कर मारना है जो विकसित देशों में अपनाया

जाता है।

- लोगों को बिना पाश्चरीकृत दूध एवं उससे बने उत्पादों के सेवन से बचने तथा मांस को पर्याप्त रूप से पकाएं जाने के लिए शिक्षित किया जाना चाहिए।
- जोखिम से पीड़ित पेशेवरों एवं शिकारियों (कसाईयों, किसानों, वधकर्त्ताओं, पशु चिकित्सकों) के लिए सावधानीपूर्वक आवश्यक है। जन्म के समय निकलने वाले पदार्थो (रक्त, गर्भनाल एवं झिल्ली), विशेषकर गर्भपात के मामलों के निपटारन के लिए बचावकारी सावधानियां अपनाना भी आवश्यक है।
- ब्रूसेलोसिस बीमारी का इलाज आमतौर पर एंटीबायोटिक दवाओं से किया जाता है जो की एक कुशल चिकित्सक की सलाह से लेनी चाहियें।
- अस्वास्थ्यकर डेयरी उत्पादों से बचना और पशुओं के समीप सावधानी बरतना जैसे– रबर के दस्ताने, गाउन या एप्रन पहनना चाहिये। यह जानवरों के बीच या प्रयोगशाला में काम करते समय ब्रूसेलोसिस से होने वाले जोखिम को रोकने या कम करने में मदद कर सकता है।
- पशुओं में बचाव हेतु समस्त पशुओं का समय से स्वास्थ्य परिक्षण एवं टीकाकरण अवश्य करवाएं

निष्कर्ष

ब्रूसेलोसिस के कारण किसान को होने वाले नुकसान से बचने के लिए नियमित रुप से पशुओं का टीकाकरण किया जाना चाहिए। पशुओं की रहने की जगह की साफ–सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए। उचित देखभाल कर के पशुओं एवम मनुष्यों को इस रोग से बचाया जा सकता है।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करेः ई. मेलः *maansi2000@rediffmail.com* एवं मो. न. *7839018262.*

आर्डर फार्म

***'किसान भारती'* मासिक पत्रिका शुल्क**

एक प्रति सामान्य मूल्य ₹15

कृपया उचित खाने में (✓) का निशान लगायें।

☐ 1 वर्ष का ₹150 ☐ 5 वर्ष का ₹675 ☐ 10 वर्ष का ₹1200 ☐ 15 वर्ष का ₹1800

सेवा में,

व्यवसाय प्रबन्धक

मैं .... रूपये का मनीआर्डर अथवा नियंत्रक, गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर– 263 145 के नाम बना हुआ बैंक ड्राफ्ट सं0 .... दिनांक .... आपको भेज रहा हूँ। कृपया मुझे निम्न पते पर माह..से .... वर्ष की सदस्यता के लिए *किसान भारती* पत्रिका को नियमित रूप से उपलब्ध कराने का कष्ट करें।

पता

नाम ....मोबाइल संख्या................................

ग्राम .... पोस्ट.. जिला.........................

पिन कोड...राज्य ....

कार्यालय के प्रयोग हेतु ....

आर्डर फार्म भेजने का पताः

व्यवसाय प्रबन्धक
गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक
विश्वविद्यालय, पंतनगर–263145
ऊधम सिंह नगर (उत्तराखण्ड)
सम्पर्कः 7500241751
ई.मेल– bmpantuniversity@gmail.com